तुकाराम-गाथा-सार

महाराष्ट्र के महान् संत के चुने हुए
हिन्दी रूपान्तर



१९५६

सत्साहित्य प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५६
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

'विवेक और साधना' के समर्थ लेखक

परमपूज्य श्री केदारनाथजी

को

सविनय

—नारायणप्रसाद

प्रकाशकीय

सतो की वाणी प्रत्येक व्यक्ति के लिए बड़ी उपयोगी होती है। दुनिया के मायाजाल में जब आदमी अशांत होकर भटकता है तो संतों के जीवन-चरित और उनके वचन उसे सही रास्ते के दर्शन कराते हैं। हमे हर्ष है कि सतों की पावन वाणी को पाठकों के लिए सुलभ कराने मे 'मण्डल' अपना यत्किंचित योग देता रहा है। सत-वाणी, बुद्ध-वाणी, महावीर-वाणी, संत-सुधा-सार आदि इसी दिशा के प्रकाशन है। इसी शृंखला मे अब महाराष्ट्र के महान् सत तुकाराम के चुने हुए विचार-रत्नों की यह मणिका पाठकों के हाथो मे पहुच रही है। पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक की सामग्री को विभिन्न वर्गो मे विभाजित कर दिया गया है।

हम चाहते थे कि तुकाराम के मूल अभंग भी अनुवाद के साथ मे देते, लेकिन उससे पुस्तक का आकार बहुत बढ जाता और मूल्य की दृष्टि से पुस्तक सामान्य स्थिति के पाठकों के लिए दुर्लभ हो जाती। आकार कम करने की विवशता के कारण न केवल मूल अभंगो को ही छोड़ा गया है, अपितु कहीं-कहीं अभंगो के अश-मात्र ही दिये गए है।

हमे विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक के वचनों का पठन-पाठन ही नही, मनन-चिन्तन भी करेगे और अपने दैनिक स्वाध्याय मे इस पुस्तक का उपयोग करेगे।

—मंत्री

दो शब्द

सत तुकाराम उन महात्माओ मे से थे, जो भूले-भटको को रास्ता दिखाने के लिए पैदा होते हैं। उनकी सरल-सुहानी दिव्य वाणी हर मराठे की ज़बान पर है। देव-पूजा या तीर्थ-यात्रा के अवसर पर किसी भी अन्य सत के नाम का ऐसा यशगान नही होता, जैसा तुकाराम के नाम का।

सम्पत्ति को वह आध्यात्मिक मार्ग की वाधा और आदमी को आदमी से अलग करनेवाली बाड समझते थे। आत्मानुभूति के बाद उन्होने पहला काम यह किया कि अपन कुटुम्ब के अपने हिस्से की सम्पत्ति के सारे अधिकार-पत्रो को नदी मे वहा दिया। उसके बाद यद्यपि वह जीविकोपार्जन करते रहे, तथापि उन्होने अपने को पूर्णतया भगवद्-कृपा पर छोड दिया।

शिवाजी की भेट की हुई धन-सम्पत्ति को उन्होने ठुकरा दिया। वह जो उपदेश देते थे उसीके अनुसार आचरण भी करते थे। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उनके कार्य ही उपदेश का काम करते थे। वे भेद-भाव को न माननेवाले, सब जीवो को समान समझनेवाले और आत्म-प्रेम को विश्व-प्रेम मे मिला देनेवाले अद्वैत की प्रति-मूर्त्ति थे। उनके गीत उनके प्रशान्त जीवन के अनुरूप थे। मराठो ने राजनैतिक अनुशासन शिवाजी से सीखा तो आध्यात्मिक अनुशासन तुकाराम से। वह जन-साधारण मे से एक थे और सर्व-साधारण की ही भाषा मे बोलते थे।

उनके सच्चे जीवन की झाकी उनके अभगो मे मिलती है। भगवत्-स्फूर्ति-युक्त अवस्था मे चार करोड अभग उनके मुह से निकले, जिनमे से सिर्फ साढे चार हजार मिलते हैं। वे कहते हैं, "मुझे स्वप्न मे सद्गुरु ने उपदेश देकर कृतार्थ किया। उसके बाद तुरन्त ही कविता की स्फूर्ति हो आई।" उनके अभग वेद-मत्रो के समान है। महाराष्ट्र मे वे 'अध्यात्म-मदिर के कलश' माने जाते है।

मलाड, बंबई

— नारायणप्रसाद जैन

विषय-सूची



तुकाराम-गाथा-सार

: १ :

आत्म-परिचय

मै शूद्रवश मे पैदा हुआ, इसीलिए मुझमे दम्भ नही रहा। हे भगवान्, तू ही अव मेरा मा-वाप है। वेद-पठन का अधिकार मुझे नही है। मै सव प्रकार से दीन और जातिहीन हू।

अच्छा हुआ हे भगवान, कि तूने मुझे किसान बनाया, वरना मै घमड से भर गया होता। हे ईश्वर, तूने अच्छा किया, क्योकि अव तुकाराम नाचता है और तेरे चरण छूता है। अगर मुझमे कुछ विद्या होती तो वडे झझट मे फस जाता। तब मै सतो की सेवा न करता और मुफ्त मे मर जाता। अगर मै मामूली किसान न होता तो मुझमे दुनिया भर का घमड आ जाता और यमराज के मार्ग से चलने लगता। वड़प्पन के अभिमान से आदमी नरक मे चला जाता है।

स्वय पाडुरग भगवान के साथ स्वप्न में आकर नामदेव महाराज ने मुझे जगाया। उन्होने मुझसे कहा, "तुम कविता करो, व्यर्थ की वाते मत करो। मैंने सौ करोड़ अभग लिखने का सकल्प किया था; उनमे से जितने बाकी है, उतने तुम लिख डालो।"

मेरा द्रव्य और धान्य लोगो के घर-घर मे भरा हुआ है, और मै अपना पेट भिक्षा से भरता हूँ। प्रभु ने मेरी सव विपयो की वासना नप्ट कर डाली है और मेरे कुटुम्व की सेवा वही करता है।

इस मृत्यु-लोक मे हरि के नाम को छोडकर मुझे और कुछ प्रिय नही लगता। मेरे चित्त को सारे प्रपच से घृणा हो गई है। सोना, रुपया, हमे मिट्टी के समान है, माणिक पत्थर की तरह है। सारे जग को भुलानेवाली स्त्रियों से मुझे विरक्ति हो गई है।

जब मुझे भान भी नही था, ससार की चिन्ता नही थी, उस समय पिता चल बसे। हे प्रभो, तेरा मेरा ही राज्य है, दूसरे का काम नही। स्त्री मर गई, वह छूट गई। देव ने माया छुडा दी। लडके मर गए, अच्छा हुआ। देव ने माया से मुक्त कर दिया। मेरे देखते मा मर गई; चिन्ता से मुक्त हो गया।

संसार की वार्ता मुझसे सहन नही होती और किसीको यह कहना कि 'यह मेरा है' मुझे नही सुहाता। देह को सुख देनेवाले उपचारो से मुझे सुख नही होना, उनका आदर अथवा भोग विषवत् अथवा बन्धनवत् लगता है। प्रतिष्ठा या गौरव मिलने पर मेरा जी बहुत ही अकुलाता है।

मै जो कुछ बोलता हू, सन्तो का उच्छिष्ट है। मै जो कुछ बोलता हूं, देव ही मुझसे बुलवाता है। उसका गुह्य अर्थ-भाव क्या है, सो भी वही जानता है।

कोई कहेगा कि यह तुकाराम कविता करता है; पर कविता की वाणी मेरी अपनी नही है। मेरी कविता का प्रकार युक्ति का नही है। मुझसे विश्व-म्भर ही बुलवाता है। मै पामर अर्थ-भेद क्या जानू? जो गोविन्द बुलवाता है, सो बोलता हू। यहा 'मै' नाम की कोई चीज़ नही है, सब-कुछ स्वामी की ही सत्ता है।

परमार्थ-विरोधी वचन मुझसे सहन नही होते। उन्हे सुनकर मेरा मन बडा दुखी होता है। इसलिए मुझे किसीकी सगति सहन नही होती। एकांत-वास ही प्रिय लगता है। देह की भावना और वासना का संग मुझे पसंद नही

आता। उससे जी ऊब गया है। आशा-मोह के जाल मे पडने से दु ख बढ़ता है और देव-आराधन मे अन्तर पड जाता है।

मै मान और दम्भ को थूककर कीर्तन करता हूँ। मै देह से उदास हो गया हू। एक देव के सिवा मुझे कोई चाह नही। अर्थ को अनर्थ सरीखा मानकर दूर रख दिया। मै सब उपाधियो से अलग रहकर पवित्र हुआ हू।

ससार मे जो कुछ है, ब्रह्मरूप है, ऐसे अनुभव का मै ऐश्वर्य भोगता हू। मेरी कामना देव को ही भोगती है और देव के आलिगन की अभिलाषा रखकर चरणो का चुम्बन लेती है। शाति के सयोग से त्रिविध ताप नष्ट कर दिया। अब भेद-बुद्धि उत्पन्न होना पाप है। जिधर देखता हूँ, उधर एक हरि का रूप ही दीखता है। इसलिए अपने और पराये का भेद नष्ट हो गया।

क्षण-क्षण साक्षी होकर मै अपनी अन्तर्मुख-वृत्ति को सभालता हू ताकि प्रभु चरणो का मुझसे सबध न टूटे। कितने ही भक्तो को अन्तराय आया, इसके भय से मै जाग्रत हो गया।

हे देव, मै तुम सरीखा शिव भी नही हू और अपने सरीखा जीव भी नही हूँ, यानी न दोनो भावो से अलग हू।

एक भगवान की ही पहचान है, दूसरी भावनाएं नष्ट हो गई। तुम्हारे अलावा अन्य नाम-रूपात्मक जगत मेरे लिए नष्ट हो गया।

मै हाथ मे विवेक की लाठी लेकर देह के पीछे लग गया। जिस तरह स्मशान में मुर्दे फुकते है, उसी तरह मैने उसे अपने ब्रह्मतेज से जला डाला।

हम श्री विट्ठल के प्रतापी वीर है। कलिकाल भी आये तो उसका सिर फोड देंगे। हम हमेशा हरिनाम-कीर्तन करते है। इस सुख के लिए हम बारम्बार जन्म लेंगे। हम मुक्ति की आशा नही करते।

जिससे मेरे चित्त में विक्षेप पड़े, ऐसी सगति में नही करूंगा। विठ्ठल के अतिरिक्त जो शब्द है, उन्हे मैं कानो से नही सुनूगा। मैं जो कुछ बोलता हूं, दूसरो के समाधान के लिए बोलता हू, लेकिन मेरा चित्त कहीं भी गुथा हुआ नही है। जिनके चित्त मे भगवत्प्रेम है, वे मुझे प्राणो से अधिक प्रिय है। देव और सन्त ही मेरे हित को जानते है। इसलिए दूसरो के बोलने की ओर मैं ध्यान नही देता।

देव के पास मुझे किस चीज़ की कमी है ? फिर मैं किसी और से क्या मांगू ? दूसरे की शमा न सुननेवाला हूँ न करनेवाला। सिवा भगवान के मुझे किसी चीज़ की इच्छा नही है। मोक्ष की न मैं आशा रखनेवाला हू, न उसके लिए प्रयास ही करनेवाला हूँ; न मैं ससार के आवागमन से डरता हू। मेरी आत्मा को सिवा परमात्मा के कुछ नही चाहिए।

पतिव्रता अपने पति के सिवा किसीको प्रशसा नही जानती। वह सर्व भाव से मन मे पति का ही ध्यान करती है। वैसे ही मेरा मन अनन्य हो गया है। सिवा भगवान के मुझे कुछ भी प्रिय नही है। सूर्य-विकासिनी कमलिनी चन्द्र के प्रकाश से नही खिलती। कोकिला वसन्त मे ही गाती है। बालक मां के आगे ही नाचता है। दूसरो के बोल उसे प्रिय नहीं लगते।

मैंने काम-क्रोध भगवान के समर्पण करके उसके चरणो का प्रेम धारण किया है। मेरा देहभाव चला गया। अब पीछे फिरकर कौन देखे ? ऋद्धि-सिद्धियो के सुखो को लात मार चुका, तो फिर इस प्राकृत ससार-सुख को कौन मानता है ? मैं विठोबा का दास हू। मैंने ब्रह्माड को ग्रास बनाकर रख दिया है।

परमेश्वर हमारे हाथ लग गया है, इसलिए हम चिन्तारहित है। हमारा मन कहीं नही दौडता। सभी इन्द्रिया संतुष्ट है। कामवासना का पूर्णतया त्याग करके मैं विठोबा का नाम लेता हूं।

आत्म-परिचय

देव की बाते मीठी लगती है, यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे सुख मिला है। उस सुख का वाणी से वर्णन नही हो सकता। अब मुझमे और देव मे अन्तर नही दीखता। इस सुख को बनाये रखने का जी-जान से यत्न करूगा।

प्रभु मेरी मा है; वह मेरी भूख-प्यास बिना कहे जानती है।

मै किसीके अवगुण नही देखता। न किसीको पापी, पवित्र या विद्वान गिनता हूं। सब तेरे ही रूप है। इसलिए सबका भावसहित वन्दन करूंगा और सेवा करूगा। मुझे केवल भक्ति की अभिलाषा है। तेरी खातिर मै विष को अमृत मानकर पीऊंगा।

मुझे तेरे ज्ञान की इच्छा नही है, मुझे तो तेरा नाम लेना ही मीठा लगता है। हे माँ विठाई, मैंने अपना सारा भार तुझपर डाल दिया है। भक्ति या वैराग्य मेरी कुछ भी समझ मे नही आता। मै निर्लज्ज होकर तेरे सामने नाचूं, इसे छोड और कोई भाव नही है मेरे मन मे।

हे वैष्णवजन, मै तोतली वाणी से 'हरि-हरि' बोलता हूं, इसके अलावा मै भिखारी और कुछ नही जानता। तुम भगवान के दास हो, मै तुम्हारा उच्छिष्ट प्रसाद पाने की आशा करता हूं।

श्री हरिचरण कमलो के समान त्रिलोक मे सुख नही है, इसीलिए मेरा मन उनमे स्थिर हो गया है। उन्हे मैंने अपनी आत्मा में धारण किया है और उनके नाम की इकहरी माला गले मे डाल ली है। इससे मै त्रिविध तापो से मुक्त होकर शाति पा गया हूं। पाण्डुरग ने मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण कर दी; मुझे सब सुख मिल गया।

मेरा सपूर्ण भार विट्ठल ने ले लिया है। अब अन्दर-बाहर उसीका रूप भरा हुआ है।

मुझे सब सुख विठोबा के चरणो से प्राप्त होते है, इसलिए और किसीकी इच्छा मेरे चित्त मे नही है। एक भगवान के सिवा मेरे चित्त में और कोई नही। मुझे मुक्तितक की परवाह नही रही।

मै एकान्त मे आनन्द से हरि का अनन्त प्रेमरस भोगू। यह प्रेमसुख गुह्य धन है। किसीकी बुरी नजर न लग जाय, इसलिए एकान्त मे इसका सेवन करूँ। हमारा यह प्रेम बडा नाजुक है। वचनो का भार नही सह सकता।

कोई अपना, कोई पराया! किन्हीका पालन करना, किन्हीसे झगडा करना! कोई अधिक कोई कम किस गुण से होता है? हे श्रीपति, तेरी माया मेरी समझ मे नही आती! इसलिए मै शपथपूर्वक कहता हूं कि मै तेरा ही चिन्तन करता हूं।

सारी दुनिया हमको सताती है। इससे मन मे शका उठती है कि क्या नारायण मर गया? अगर हम लोगों से डरने लगे तो क्या उससे ईश्वर को शर्म नही आयगी?

सन्तो ने अपने चरण मेरे चित्त मे रख दिये है। अब मुझे काल नही बाध सकता। मेरी सारी विषमता शीतल हो गई। अब अन्दर-बाहर एक ईश्वर ही है, इसलिए मन भयरहित हो गया है। भय तो अब स्वप्न मे भी नही लगता।

हम विठोबा के लाडले है, इसलिए काल के भी काल है। अब सब जगह हमारा शासन है। अब ऐसी किसकी वैखरी वाणी है, जो हमारे सामने बोल सके? अब हमारे हाथ मे हरिनाम का तीक्ष्ण बाण है।

मै खाता-पीता, लेता-देता हूं, परन्तु सारा जमा-खर्च करता हूं तेरे ही नाम पर। अब सारा झंझट खत्म हो गया। अपना सारा भार तेरे सिर पर डालकर मै निश्चिन्त हो गया हू।

हमारे लिए सर्व-दिशा और सारा काल शुभ हो गया है। जो अशुभ था,

वह मगल का भी मगल हो गया है। सुख-दु ख से विपरीत नही रहा। अव आघात भी हितफल देता है। अव सारे जीव हमारे लिए अच्छे हो गए है।

सचित ही भोगू, आगे किसीका न लू। आत्मस्वरूप में वैठा रहूं, किसीकी चाकरी न करू। आजतक विषय-काम के हाथ पडा रहा, कभी विश्राति न पाई। अव पराधीनता समाप्त हो गई। अव से मै अपनी सत्ता चलाऊ।

जो सुखराशि वैकुण्ठ मे भी नही मिलती, वे सर्व सुख-ऐश्वर्य मुझमें निरन्तर निवास करते है।

मुझसे प्रभु ने जैसा कुछ बुलवाया, वैसा मै बोला, वरना मेरी जाति और कुल के वारे मे तो आप जानते ही है। हे सन्त मा-वाप, मुझ दीन पर क्रोध न करके मुझे मेरी बातो के लिए क्षमा करो। मेरे भावी अपराधो को मन में न लाकर मुझे अपने चरणो के निकट जगह दो।

मै सन्तो के घर का दास बनकर उनके द्वार-आगन में लोटूगा, क्योकि उनकी चरण-रज के लगने से मेरे बयालीस कुलो का उद्धार होगा।

दुष्ट की सगति न हो। उससे भजन मे बाधा पडती है। हे विट्ठल, दुष्ट लोग तेरा निषेध करते है, मुझे यह विल्कुल सहन नही होता। मै अकेला किस-किस से वाद-विवाद करू? तेरे गुण गाऊँ या इन दुष्टो की खबर लू?

जिस पद मे राम का नाम नही है, उसे सुनने मे मुझे कष्ट होता है। तेरा कहलाकर अब दूसरे का कहलाने मे मुझे लज्जा आती है। मुझे सर्व-भाव से एक तू ही प्रिय है।

मुझे सन्त-समागम और भगवान का नाम ही प्रिय है। मोक्ष की इच्छा यहा किसको है? मै तो भगवान की सेवा ही मागता हूँ।

मैंने अपना सब भार भगवान पांडुरग पर छोड दिया है। वह मेरा सुख दु:ख देखकर जिसमे अतिहित देखते है, करते है।

मैं अपने चित्त को मोडकर धीरे-धीरे एक हित-मार्ग पर लाता हूँ, परन्तु पडित दोप निकालते है। इससे शका के आघात पहुंचते है। मैं ससार से डरता हूँ, एक भाव से भगवान के निकट आना चाहता हूं।

अपनी देहतक की हमने उपेक्षा कर दी है। अब कहा जाकर किसको हित की बाते सुनाऊ ? अपना-अपना ससार चलाने मे कौन दक्ष नही है ? हमने सासारिक विचारो का वमन कर दिया है। जब मैं अपनी जानतक की लालसा नही रखता, तो औरो की सभाल कैसे करूं ? जिस विपय मे मुझे रस नहीं रहा, उसमें दूसरे की प्रसन्नता के लिए क्यो लिपटू ?

इसको मुझे स्पष्ट प्रतीति होगई है कि तारनेवाला और मारनेवाला तू ही है।

मेरा स्वरूप मेरे हाथ आ गया। अब सबकुछ अच्छा है। अब द्वैत किसलिए ? वह तो अन्दर की गन्दगी है।

मैं भी भगवान हूं, आप भी भगवान है। परन्तु दोनो मे एक-दूसरे के प्रति भीति अधिक है। जो कोई भक्ति मे दृढ है, उसके पीछे-पीछे भगवान दौडते है।

गंगा के प्रवाह की तरह मैं सहज बोलता जाता हूं। भाग्यवान इसका सेवन करेगे। यहा सब अधिकारी कहां है ?

प्रपचों की यह खटपट कब पूरी होगी ? इस जाल से छूटकर मैं कब विश्राति पाऊंगा ? इसके दुःख से मेरे प्राण निकलने-से लगते है। इस प्रपच के स्वरूप की प्रतीति न होने से लोग उसमे सुखी है। भोगो से मेरा मन शुरु मे ही त्रस्त है। सलिए वह कही छिपने का ठिकाना ढूढ रहा है।

सारे ससार से अलग रहकर मै दुनिया का कौतुक देखूंगा। संसार मे भूले हुओ की आंखो मे धुन्ध छा गई है। डूबे हुओं मे से कोई सिर ऊपर नही निकाल सकता।

निश्चय मानो कि ये मेरे बोल नही है। मै तो भगवान का मजदूर हू। मेरी वाणी नामघोष से मधुर हो गई है और उससे मेरा मानस निश्चिन्त होकर आनन्दभरित हो गया है। अब ससार का भय नष्ट हो गया है। अब मै चिदाकाश का हो गया हूं। यह सब सन्तो का प्रसाद है। इससे भगवान का आनन्द प्राप्त हुआ है।

पुत्र, पत्नी, बन्धु, आदि शरीर के सबधी, धन के लोभी, मायावी लोग, मित्र, रिश्तेदार, स्वजनादि, नाना प्रकार के घातक कर्मो मे लथेडते है। ये मुझे डुबाने की घात में है। इनसे मेरी रक्षा करो। हे प्रभो, मैं तुम्हारी शरण आया हू।

जबतक हीरा नही मिला, तबतक काच की शोभा, जबतक सूर्योदय नही हुआ, तभीतक दीपक की शोभा। उसी तरह जबतक तुकाराम से भेट नही हुई है, तभीतक अन्य संतो की बाते चलेंगी।

मैंने अपना सब भार उसके सिर पर डाल दिया है, इसलिए मेरी सारी चिन्ता खत्म हो गई।

जिनके चित्त शुद्ध है, वे मुझे अत्यत प्रिय है।

मेरे अहंकार पर पत्थर पडें। दभ से प्राप्त हुए यश मे आग लगे।

जो मेरे अनुभव में आया है, उसे ही मै लोगो को देता हूं।

अंतर की ज्योति की दीप्ति जो पहले आच्छादित थी, प्रकाशित हो गई। उससे इतना आनन्द हुआ है कि ब्रह्माड में भी वह नही समाता। उससे

मुझे जो सुख हुआ, उसके लिए कोई उपमा नही है।

धन-मान प्रारब्ध से मिलता है। प्रारब्ध से ही सुख-दुःख होता है। प्रारब्ध से ही पेट भरता है। इसलिए मैं व्यर्थ किसीको वुरा-भला नही कहता।

जगत् के साथ मुझे क्या लेना-देना ? मेरा सारा वोझ पाडुरग पर है। विठोवा का नामकीर्तन करना ही मेरा कुल-साधन है।

सुख का व्यापार करने से मुझे सुख की इतनी कमाई हो गई कि आगे-पीछे और सब दिशाओ मे आनन्द-ही-आनन्द व्याप्त हो गया। अव तो मुझे देव की ही सोहवत और उसकी ही पगत मे बैठना है। समर्थ देव के घर में सव प्रकार की संपत्ति भरी पडी है। वहा कभी किसी चीज की कमी नही पड़ती। देव के घर मे अपार लाभ का वास होता है।

दस मे से एक आदमी अच्छा है, ऐसा कहे तो अन्य लोगो की निन्दा करने का दोप सहज ही लगता है। इसलिए कौन अच्छा और कौन वुरा इसका विचार करने की वृत्ति मुझमें है ही नही। सव विषयो में हम अपने मुंह पर ताला मार-कर वाणी का उपयोग केवल हरिनाम स्मरण में ही करे।

मैं हरिनाम का सिक्का लिये हुए हूं। उसकी सहायता से मैं कलिकाल को धक्का मारकर पीछे हटा सकता हूं। इस सिक्के को यों ही न समझना। यह जिसका है उसके समान है और उसके न मानने से नाक-कान कट जाते हैं। मैं नाम-रूपी सिक्के से निजानन्द के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ हूं।

भूतमात्र मे देवता का वास है, यह समझकर मैं सव लोगो को आलिंगन देता हूं। परन्तु वैसा करते समय यह व्यक्ति पुरुप है या स्त्री, इसका विचार मन मे नही लाता। मेरे मन के भाव को भगवान जानते हैं।

दसो दिशाओ मे भटकनेवाला मेरापन जवसे तेरे पास लौट आया है, तवसे उसे परम तृप्ति हो गई है।

फिजूल की बाते कहने मे वाणी का व्यय कौन करे ? अब तो मुझे वही करना है जिससे भगवान् को हृदय मे धारण कर सकू । ईश-चिन्तन का उपदेश देने से मै पागल गिना जाता हूं ।

लोगो की निन्दा-स्तुति को सुनकर मैं बहरे की तरह रहूंगा, जैसे स्वप्न-सृष्टि जगने पर मिथ्या हो जाती है, उसी प्रकार इस प्रपच को झूठा मानकर मैं अन्धे की तरह रहूंगा ।

मैं प्रभु के चरणो को कभी नहीं बिसारने का । इतना किया तो मेरी सब चिन्ताओ का भार भगवान अपना समझकर अपने ऊपर ले लेगे । प्रभु-चरण रूपी सच्ची अमृत-संजीवनी मेरे हृदय में हमेशा रहती है ।

मेरा यह अनुभव आप देखिये कि मैंने ईश्वर को कैसे अपना बना लिया । ज्यो ही क्षुद्र ससार का त्याग किया कि भगवान अपने हो जाते है । मेरे धैर्य रखने से देव इतना मेरे पास-पास रहता है, मानो मझसे चिपट गया हो ।

'इस शरीर से मैं पृथक् हू', इस बात को भूलकर मैंने अपना गला मूर्खतावश अपने ही हाथ से दवा डाला है—अपने स्वरूप को देह-बुद्धि से ढँक रखा है । 'यह मेरा घर', 'यह मेरा लडका' ऐसा मैंने माना ही कैसे ?

मुझे समस्त जगत् देवरूप दीखता है । इससे मेरी गुण-दोष देखने की वृत्ति क्षीण हो गई है । यह बडा अच्छा हुआ है—बडा ही अच्छा हुआ है । आरसी में भले ही दूसरा प्रतिबिम्व दिखाई देता हो, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखनेवाले को विम्व और प्रतिबिम्ब एक-का-एक ही है । नदी का समुद्र के साथ समागम होने पर नदी का नदीपन खो जाता है और वह समुद्र ही हो जाती है ।

मुझे जो-कुछ मिला है, मेरे सचित कर्मो का फल है । मेरा अन्त.करण प्रेम-भक्ति के माधुर्य से सराबोर हो गया है जिससे मैं आनन्द मे ही रहता

हूँ। मेरा जीवन आनन्द से भरपूर हो गया है। भगवान ने मेरे अज्ञान का पर्दा दूर कर दिया है, जिससे मेरी दृष्टि मे सारा जगत् ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हो गया है। ईश्वर ने मेरी कामनाए दूर कर दी है, इसलिए मेरी उसके प्रति बडी प्रीति है।

जो त्रिविध-ताप-ज्वर से पीड़ित है, उन्हें मै नारायणरूपी औषध देता हूँ।

जो देव सर्व-व्यापक है, वह मेरे हृदय में न हो, यह कैसे हो सकता है?

देह-विषयक मैंने जो-जो आशाएं बाधी, उनसे मुझे भारी क्लेश हुआ।

अमुक मनुष्य का समाधान करने से मुझे कोई प्रयोजन नही है। इससे स्वय को और दूसरे को दु.ख होता है।

पहले मेरे मन के अन्दर नाना प्रकार की आशाएं, और तत्संबंधी असख्य चिन्ताए थी, परन्तु उन दोनो का अब मैंने नाश कर डाला है।

यदि ईश्वर-भक्ति का यह उपाय पहले से ही मै जान गया होता, तो इतने कालतक गर्भवास (जन्म-मरण) का दुःख क्यों भोगता? स्त्री पुत्र के कष्ट झेल-झेलकर नाहक क्यों मरता?

मुझे तो एक शुद्ध भाव ही मान्य है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी ज्ञान-चातुर्य की मुझे कोई आवश्यकता नही है।

यह सब जगत् मुझे भगवान्-रूप दीखता है। इससे मुझे जो आनन्द होता है, उससे मेरा सपूर्ण शरीर शीतल हो जाता है। इसलिए मै अपने अटपटे परन्तु प्रेमभरे शब्दो से उस देव की करुणा की भिक्षा माग रहा हूं और ऐसा करने से मेरे मन को बड़ा सुख होता है। मुझमें जो भेदात्मक भावना थी, उसका क्षय हो गया है, जिससे मुझमें दुःख की तो छायातक नही रही। मै तो तेरे

रग मे रग गया हूँ, इससे मेरा जीव अत्यत सुखी हो गया है।

मै ऐसे देव का दास हू कि जिसे कोई कामना नही है और जो सुख-दु:ख आदि द्वद्वो से रहित है। मेरे योग-क्षेम को निभाने की पूर्ण चिन्ता उसे है। मेरा हितकर्त्ता भी वही है। मै उसके गीत मधुर स्वर से गाऊगा और अन्य किसी विचार को चित्त मे प्रविष्ट न होने दूगा।

लोक-सुख नाशवत और बाह्य है। उसे लेकर मै क्या करूंगा ?

देव ने मुझे अमृत-पद का दान दिया है। इस उपकार के बदले मैने उसे अपना कठहार बना लिया है। 'यह मेरा, यह तेरा' मेरे इस द्वैत को देव ने क्षय कर डाला।

मुझे किसीसे कुछ नही मागना। मागने योग्य एक देव है और वह तो मेरे पास ही है। मै उससे इन्द्र का पद मांग लू मगर उसको लेकर क्या करूगा ? वह शाश्वत तो है नही। वैकुण्ठ-पद मांग लू, उसमे भी कुछ मजा नही। वह एकदेशीय और दरिद्री है। चिरजीव आयुष माँग लूं ? जीव अमर तो है ही, फिर चिरजीवपने मे क्या ज्यादा है ? जो एकत्व किसीसे किसी प्रकार कभी भ्रष्ट हो ही नही सकता, ऐसे आत्मैक्यभाव को ही मै मांगता हू।

मेरे घर मे शब्द-रूपी रत्नो का खजाना है। शब्द ही मेरे जीने का एक साधन है और लोगो को मै शब्द का ही दान देता हूँ। देखो, देखो, यह शब्द ही देव है और शब्द-गौरव से ही मै उसका पूजन करता हूं।

जब मै अपना ससार छोड बैठा हूं, तब मुझे लोकाचार की क्या दरकार है ? देव के सिवा मेरा कोई इष्ट-मित्र, स्नेही-स्वजन, सगा-प्यारा है ही नही। अपने शरीर के संपूर्ण सबधियो का मैने त्याग कर दिया है। नाना प्रकार की प्रपचपूर्ण उपाधियो की बातें सुनने से मेरे कान इन्कार करते है। प्रभु, दया करके मुझे विषय-वासना के सुख-दु:ख से दूर रखना।

मै हर समय हरिनाम स्मरण करता रहता हूं, इससे मेरा मन समाहित अवस्था में रहता है और उसीका नाम है समाधि । मै कही गुफा आदि में भटकने नही जानेवाला । मै तो वही रहूगा जहा भक्तो की मंडली जमी होगी । नाम-स्मरण के सिवा उपवास, त, आदि मै कभी नही करनेवाला ।

जिस घडी मैने अपना जीवभाव तुझे अर्पण कर दिया, उसी घडी उसका ऐसा क्षय होगया कि वह ढूढे भी नही मिलता ! हे अनन्त! अव तो मै जो-कुछ करता हूँ, तेरी ही सत्ता द्वारा करता हूँ ।

देव का और मेरा मूल से ही स्वरूपैक्य है । झूठे प्रपच के मोह के कारण देव से मिलने मे वडा विलम्व हो गया ।

जिनकी वृत्तिया स्थिर हो गई हो, उनको मै अपना मित्र मानता हूं ।

स्वामी की सत्ता द्वारा सम्पूर्ण मर्म पहले से हस्तगत हो जाने पर वार-वार विशेष लाभो की प्राप्ति होती रहती है । मै भावहीन सयाना नही हूँ । मैने अपने स्वामी के मन के साथ अपना मन मिला लिया है, जिससे मै उसके अन्त करण की वाते जान जाता हूं । मै परिश्रम-पूर्वक अपने मन को प्रत्येक क्षण जाग्रतावस्था मे रखता हू । अव मै देव से तनिक भी विलग नही रहने वाला ।

चित्तवृत्ति को एकाग्र करके मै हर ग्रास और हर घूट पर देव का स्मरण करता हुआ खाता-पीता हू । मै चित्त को जाग्रत रखता हू, द्वैतभाव के घुस आने की मुझे वडी आशका रहती है ।

मेरी इच्छा थी कि लोगो के ऊपर अपने वडप्पन की छाप विठाकर खूब मान प्रतिष्ठा पाऊ, इसी कारण देव मुझसे विलग हो गया है ।

अव अहकार से मेरा सवध नही रहा, इससे तमाम प्रपच का निरसन हो गया है ।

मेरी अविद्या की रात्रि का अन्त आ गया है। अव देहवुद्धि-रूपी मोहनिद्रा को भूल गया हू। मेरा निवास नारायण के स्वरूप के अन्दर हो गया तबसे मुझे आनन्द-ही-आनन्द हो गया है। तमाम जगत मे सब जगह सब-कुछ मेरे ही स्वरूप से परिपूर्ण हो गया है। इससे मैं यह समझ गया हूं कि मेरा यह ज्ञान कितना मिथ्या था कि 'मै यह देह हू', और 'इस देह के सबधी मेरे सबधी है।' अव तो देव और मै दोनो एकरूप हो गए है।

मैंने बहुत-से मत-मतान्तरो का त्याग किया है और जिसके द्वारा अपना कार्य हो जाय उसे ही पकडकर बैठा हुआ हूं।

देह तो कर्माधीन है। उसके योग-क्षेम को अपने सिर पर लेकर मैं क्यो वृथा दु ख करू ? शरीर के सबधियो को अपने सबंधी मान बैठने की दुर्भावना से मै आज तक बडे सकट उठाता आया हू।

मेरा मन निश्चल और स्थिर हो गया है, जिससे मुझे बांध रखनेवाली आशा के बधन टूट गए है। हरि-प्रेम-प्रवाह से मुझमें आनन्द की बाढ आ गई है।

मैं अपने चित्त मे एकनिष्ठ भाव धारण करके भूत-मात्र के प्रति दया, क्षमा और शान्ति धारण करके रहता हू।

लक्ष्मीपति सरीखा दातार मुझे मिला है, फिर मुझे मांगने के लिए रहा क्या ?

भगवान् के चरणो के निकट कमी किस बात की है। उनके आगे ऋद्धियां और सिद्धिया दासी बनी खडी रहती है। परन्तु उस नाशवत सुख की ओर निगाह कौन करता है ? मै पाप-पुण्य दोनो को पार कर गया हू।

ऐसी मधुर प्रेम-भक्ति का आनन्द-भोग छोड़ मुझे जीवनमुक्त बनने से

क्या काम ? नारायण स्वय भक्तों का दास है, फिर उससे मिलना क्या मुश्किल है ? हे देव, मुझे सायुज्य मुक्ति नही चाहिए। मै तो सन्तो के समागम मे अधिक आनन्दपूर्वक रहूगा।

वैकुंठ के दिव्यभोग मुझे इसी लोक मे भोगने मिले, ऐसा उच्च प्रेम मैं मांगता हूं।

मान-अमान, भाव-अभाव आदि सब द्वन्द्व टल गए और मेरी देह ही भगवान-स्वरूप बन गई है। ऐसी अवस्थावाले भाग्यवान् है। जीवन का यही हेतु होना चाहिए।

भूतमात्र मे भगवान का वास है, ऐसा पूर्ण अनुभवयुक्त वैराग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

मै जिसको चाहूगा, मान दूगा, मेरी मर्जी न होगी तो न दूगा। वैसे, राजा और रक मुझे समान है। जब मै अपनी देह तक के प्रति उदासीन भाव रखता हू, तब दूसरे की आख की शरम रखने का मुझे क्या कारण है ? तब तो मैं अपनी सहज लीला के अनुसार खेल खेल रहा हू। मै सुख और दु:ख से परे हो गया हू।

अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण का भार मैंने तेरे ऊपर डाल दिया है। मै तो एक निमित्त-मात्र हू। मै व्यवहार का कामकाज करता हूं, परन्तु हृदय में हर समय तेरा नाम धारण किये रहता हू।

स्वरूप-अज्ञान-रूपी अधेरी रात्रि को मै खा गया हूं, इसलिए अब काल भी मुझे नही पकड सकता। स्वरूप के ऊपर पर्दे की तरह पड़ी हुई माया ने ही इस प्रपच का तमाशा खड़ा कर रखा है। उस माया ने प्रपच का वेश धारण करके जो भाव प्रकट किया वही अब नही रहने पाया, इसलिए देहादिक प्रपंच के घर में मुझे फिर से घुसना पडे, ऐसी परिस्थिति ही नही रही।

इसका कारण यह है कि मैंने तमाम उपाधियां श्रीहरि के पास भेज दी है। अब मैं किसीके हाथ नही आनेवाला । अब मेरी ऐसी अचिन्त्य स्थिति हो गई है कि उसका वर्णन नही हो सकता ।

मैं अणु-रेणु से भी सूक्ष्म हूँ और आकाश जितना बडा हू। मैंने भ्रमजन्य देहादि प्रपच के आकार का क्षय कर दिया है । ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान की त्रिपुरी का निरास करके मैंने आत्मबोध-रूपी दीपक अपनी देह के अन्दर प्रकटाया है । अब तो मैं अपना अवशिष्ट प्रारब्ध भोगने भर के लिए और लोकोपकार के लिए ही जीता हू ।

मान, प्रतिष्ठा और दम्भ मुझे सूअर की विष्ठा के समान लगता है ।

मृत्यु आने से पहले ही मैं तो मर चुका हूं । मेरे मन मे जो आता है सो करता रहता हू । तुम मेरे नये-नये खेल देखा करो, मेरे साथ विवाद करने का व्यर्थ श्रम न लो ।

अब किसीको मुझसे कोई आशा नही रखनी चाहिए। मैं तो भगवान के लिए दीवाना बन गया हू ।

सग्रह, त्याग पर मैंने बडी सिरपच्ची की । उससे दु ख घटने के बदले बढा । अब तो मैं अनन्त के कदमो के आगे पडा रहता हूं । अब मुझे जन्म-मरण के जजाल मे फसने का कोई कारण नही रहा ।

एकविध भाव से एकान्त में रहने से जो सुख होता है, वह मुझे प्राप्त हो गया है ।

अव मैं सत्त्व, रज और तम, इन तीनो गुणों को त्याग करके निर्गुण देव का वन गया हू ।

मैं क्या गाऊ ? मेरा गाना सुननेवाला तो कोई है नही । जहा जाता हू, सारी दुनिया को वि षय-तृष्णा से भान भूली हुई पाता हूँ । इसलिए अब

मैं अपने आत्माराम के साथ क्रीडा करूंगा और जैसी वन पडे वैसी वात करके छूटूगा।

जो निप्काम चित्त से राम-भजन करता है, उसका मैं दास हूं।

जो तृप्णा के आसन पर वैठे हैं, उनका कुछ नही वचनेवाला, सव लुट जायगा। इसलिए मैं दुनिया से मुह मोड़कर राम के रास्ते लगा।

ससारी लोगो को पैसा अपने जीवन से भी अधिक प्यारा लगता है, परन्तु मुझे वह पैसा पत्थर से भी तुच्छ लगता है। सगे-संबंधी, इप्ट-मित्र, सज्जन और वन ये सव मुझे एक सरीखे हैं।

श्रीहरि का कीर्त्तन करके मैं शुद्ध हो गया हूं, इसलिए मेरे लिए तो सारा त्रैलोक्य भी शुद्ध हो गया है। अव से मैं परब्रह्मरूपी नगर मे स्थायी रूप से रहता हू। वहा भेदात्मक प्रपचरूपी अपवित्रता पर मेरी निगाह नही पडती। अव मैं एकान्त मे परब्रह्मरस का पान करता रहता हू।

मैं जन्म-मृत्यु के चक्कर मे फंसकर वहुत थक गया था, परन्तु राम-स्मरण से वह थकान दूर हो गई और मेरी काया शीतल हो गई।

मेरी कुल पूजी एक भगवान है। ये शव्द भी मेरे मुख से उन्होंने वुलवाये हैं।

समस्त व्यसनो को नप्ट करके और संगमात्र का त्याग करके मैं विलकुल नि:संग भाव से नाचनेवाला नट वन गया हूँ। इससे मैं सर्वत्र समान रूप से देव को ही देखता हू सर्वत्र मैं ही व्याप्त होगया हूं। अव किसी और को नही आने देनेवाला।

द्रव्य की और कुटुम्वियो की अव मुझे कोई अभिलापा नही है। मुझे अपनी जान की परवाह नही। शरीर तक को वस्त्र से ढकने की क्या

आवश्यकता है ? अब मुझे लाज-शर्म भी किसकी रखनी है ? क्योंकि चारो तरफ एक देव के सिवा मुझे और कोई नही दिखाई देता ।

शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के क्षण मेरे लिए शुभ ही हो गए हैं, क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि देव मुझपर कृपा करेंगे ही। इसलिए अपने सम्पूर्ण व्यापारो मे मैं आनन्द का ही व्यापार करता रहता हूँ। इसके सिवा और कुछ मैं जानता तक नही हूं। ऐसा होने से मेरा चित्त समाहित रहता है। इसलिए लाभ, हानि, सुख-दु ख के धक्के मेरे अन्त.करण को नही लगते। इस प्रकार मैं ससार में रहते हुए भी उसमे लिप्त नही होता। प्रापचिक विस्तार को मैंने अपने मन से दूर कर रखा है और मेरे अन्त.करण की प्रीति तो मेरे जीवनाधार तुल्य हरि के नाम पर स्थिर हो गई है। इससे मेरे मन पर होनेवाले तमाम आघातो-प्रतिघातो का शमन हो गया है।

: २ :

नाम-महिमा

विदुर के यहां साग-पात खाने से क्या देव भूखा रह गया था ? कुब्जा दासी का वदन तीन जगह से टेढा था। वह कुरूपता की राशि थी। फिर भी भगवान ने उसीका स्वीकार किया था न ?

साधु-सन्तो का नाम लेने से पुण्य होता है। इसीलिए मेरी वाचा उनका निरन्तर नाम लेती है। इससे महालाभ मुफ्त मे मिलता है। सन्तो के चरणों मे भावलीन रहना ही विश्रांति है। सन्तो के जप से सब पाप कट जाते है।

कुमुदिनी अपनी सुगंध को नही जानती, उसका भोग तो भ्रमर ही करता है। इसी प्रकार हे देव ! अपने नाम की मिठास की आपको जानकारी नहीं है, उसका प्रेम-सुख तो हम ही जानते है।

आपके चरणों के सुख के संबंध मे क्या कहूं, आपको उसका अनुभव नही है। कितना ही वर्णन करू, आपको सत्य नही लगेगा, क्योकि अमृत के गुण अमृत नही जानता।

हरि का नाम सार का भी सार है। इससे यम भी शरणागत होकर किंकर बन जाता है। नाम उत्तम से भी उत्तम है। इसलिए वाणी से पुरुषोत्तम बोलो। क्या कहूं, भगवान् के चरण ही तारक है।

अन्तकाल में भी जिसके मुह मे देव का नाम आ गया, उसके सुख का पार नही है।

मुह मे भगवान का नाम लू, यही मेरा नियम-धर्म है; सन्तों के पैरों पड़ना, यही मेरी उपासना है।

भगवान का नाम ही अच्छा है, वही सत्य है। उसीसे बंधन टूटते है; उसीसे दोनो लोको मे कीर्ति होती है। जिसमे हरि की श्रद्धा है, उसे हरि की प्राप्ति तत्काल होती है। भोला भक्त कलिकाल को जीतना जानता है।

देव-प्रेम मन में न हो तो न सही, मगर वाणी में उसका नाम हमेशा रहने दे। उसके चिन्तन में और नाम-सकीर्तन मे जीवन बीते। चाहे नाम दभ से ही क्यो न ले, मगर ले, कभी-न-कभी भगवान सुध लेगे ही।

भगवान का नाम लेने से भवरोग का निरसन होता है, सचित क्रियमाण भोग का नाश होता है। इसे उच्चारने से जन्म-मरण का नाश होता है, पाप नजदीक नही आ सकता, त्रिविध-ताप जाता रहता है, माया दासी हो जाती है और पैरो पडने लगती है।

हे प्रभो, अगर मै पतित न होता तो तू पावन किसको करता ? इसलिए पहले मेरा नाम है, बाद मे तेरा। अगर लोहा न होता तो पारस पत्थर अन्य पत्थरो जैसा होता। भगवान कल्पना से कल्पतरुतक को कल्पित वस्तु देता है।

मुझे यह निश्चय हो गया है कि मै इस भवसागर से पार हो गया हू। ससार को छोडकर तेरा नाम कंठ मे धारण किया है। अब एक हरि को छोडकर और कुछ शेष नही बचा।

भगवानरूपी मा याद करते ही दौडती आकर याद करनेवाले को प्यार करती है। हरि के नाम गाने से सायुज्यता (मुक्ति) मिलती है।

यहा सब सुखों का आधार नाम है। जब द्वैत चला जाता है, उसी समय ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और शरीर भी ब्रह्मरूप हो जाता है। भ्राति छोडकर देखोगे तो सब सुख नाम मे ही दिखाई देंगे।

भगवान का नाम ही सर्वधर्म है । इसके अलावा मैं दूसरा साधन नही जानता ।

द्रव्य को मैं गन्दी चीज मानता हू । कारण, उसके पीछे काल लगता है । नारायण के नाम का ही जीवन मैंने धारण कर लिया हैं । मेरे पास जो याचक आयेंगे, उन्हे इसीका दान देने की कोशिश करूंगा ।

सारभूत मर्म राम है, इसलिए हम भाविक भक्तों ने उसे हृदय में रख लिया है । लोहा, चकमक, पत्थर और रुई, ये अग्नि को सिद्ध करने के लिए ही रखने पडते है, वरना उनका बोझा कौन उठाने वैं !

भगवान जो-कुछ करते हैं, मेरे भले के लिए करते हैं, यह अनुभव मेरे चित्त को पूरी तरह हो गया है । मेरे जीव को अपार आनन्द हो गया, क्योंकि परमानन्द ने मेरा सम्पूर्ण भार ले लिया । उन्हे अपने नाम का अभिमान है, इसलिए वे शरणागत को अपने वल से तारते है ।

नाम से ही सिद्धि होगी, मगर वह नाम ोषरहित बुद्धि से लेना चाहिए ।

राम ही राज्य हैं, राम ही प्रजा है, राम ही लोकपाल है । दूसरा कोई नही हैं । स्वामी-सेवक का भाव नष्ट हो गया है ।

जहा दया, क्षमा, शाति है, वहां देव का वास है । देव उसके घर दौडता आ जाकर उसके हृदय में वास करता है । देव का नाम लेने से उसकी पूजा व प्राप्ति हो जाती है ।

जिसकी जीभ पर भगवान का नाम नही आता, उसकी वोली मुझे अच्छी नही लगती । जो भगवान से सब प्रकार से विमुख है, उसे मैं अपना कभी नहीं कहता, वह मेरा शत्रु है । जिसको भगवान का नाम प्रिय नही है, वह अधम है ।

जिस क्षण देव के चरणों मे मेरी बुद्धि स्थिर हुई, उसी क्षण मेरे मनोरथ पूर्ण हो गए। जीव समाधान पाकर निश्चल हो गया, और आकुलता की मुझे याद तक न रही। भगवान के प्रेमसुख से मन के सुखी होने के कारण त्रिविध-ताप का दहन हो गया। महालाभ भगवान का वाणी पर वास हो गया और हृदय मे भी उनका अखड अगसंग हो गया। आत्मा के परमात्मा पद पाने से विश्व विश्वभर मे लय हो गया।

राम के दो अक्षरो को छोडकर यह सब जजाल किसलिए करना है ?

आकस्मिक नामोच्चारतक से सद्गति मिलती है; वही नाम सतत लेने से भगवान निकट आकर खडे हो जाते है, और राम-नाम-स्मरण भक्ति-भावपूर्वक किया तो उसकी स्थिति तो कौन जान सकता है ?

नाम मीठा है। उसीसे सारी इच्छाए पूर्ण होती है। अन्य रसों के सेवन से मृत्यु निश्चित आ जाती है। परन्तु इस नाम-रस से जन्म-मृत्यु-चक्र समाप्त हो जाता है।

नाम लेनेवालो के ससार-क्रम का निवारण हो गया। जिन्होने रामनाम पर विश्वास रखा उन्होने भवपाश तोड़ डाले। भाविको ने नाम सकीर्त्तन से कलिकाल को झुकाकर अपने वस मे कर लिया हैं।

प्रभु के भक्त चिन्ता-आशा-रहित होने के कारण सदा निर्भय रहते है।

यह बात बहुतो ने सिद्ध कर दी है कि मुख मे नाम रखने से हाथ मे मोक्ष आजाता है। उसके लिए न भस्म-दड-लकडी चाहिए, न तीर्थ-भ्रमण। नाम चिन्तन हो, तो ईश-प्राप्ति में कोई बाधा नही आती।

जिसके मुह मे हरि का नाम नही है, उसके सुखो मे आग लगे। मुझपर कितनी भी विपत्ति पडे, परन्तु चित्त मे राम रहे। हरि-चिंतनरहित धन,

सम्पत्ति, उत्तम कुल समूल जल जाय । हे प्रभो, मुझे वह स्थिति दो, जिसमे तुम्हारी सेवा होती रहे ।

समुद्र-वेष्टित पृथ्वी का दान भी नाम-चिंतन की बराबरी नही कर सकता । इसलिए आलस न करो । रात-दिन रामनाम लो । तमाम वेद-शास्त्रों का पठन भी गोविंद के नाम की तुलना मे कुछ नही है । प्रयाग, काशी, आदि समस्त तीर्थो की यात्रा भी रामनाम के सामने कुछ नही है । विठोबा का नाम ही सार है ।

कविता करने से कोई सन्त नही हो जाता । न कोई सन्त का संबंधी होने से सन्त होता है । सन्त का वेष धारण करने से या सन्त उपनाम रख लेने से भी कोई सन्त नही हो जाता । शत्रु के प्रहारो को जो सहन करता है, वही शूर सन्त है । हाथ मे इकतारा लेकर गुदडी ओढने से कोई सन्त नही होता । कीर्तन करने से सन्त नही होता । पुराणो के अर्थ बताने से सन्त नही होता, वेद-पठन से सन्त नही होता, कर्मो के आचरण से सन्त नही होता; तप-तीर्थाटन करने से सन्त नही होता; वन-सेवन से सन्त नही होता, माला-मुद्रा से सन्त नही होता, भस्म रमाने से सन्त नही होता । जबतक देह-बुद्धि, देहात्मभाव, नष्ट नही हुआ, तबतक उपर्युक्त सब लोग ससारी ही है ।

जो कोई हरि का नाम लेता है, उसके पीछे-पीछे प्रभु का प्रेम ेड़ता है ।

हरि का नाम लेते ही ससार-बधन टूटने लगते है । नाम के सिवा हरि-प्राप्ति का और कोई उपाय नही है । मै सबसे पुकारकर कहता हूं, नाम लिये बिना न रहो ।

हरि का नाम लेते ही पापो का नाश हो जाता है और उत्तम गति मिलती है । राम के नाम से कलिकाल थर-थर कापता है । रामनाम लेने से मुक्ति मिलती है । सीसे आवागमन मिटता है और सारे संसार-बधन टूट जाते है । किसी और तप-अनुष्ठान की आवश्यकता नही है । भक्ति-भावसहित हरि का नाम जपो तो काल-यम शरण आ जायगा ।

नाम-महिमा

प्रेम से प्रभु के स्वरूप का स्मरण करके उसमे जीव को निमग्न कर देना ही प्रभु-मिलाप है। नाम-स्मरण से प्रभु का रूप ही अपने पास आ जाता है। प्रभु का नाम बार-बार लेने से शरीर की सम्पूर्ण नसे आनन्द से शात हो जाती है।

'राम' नाम के स्मरण करने मात्र से ही काम और क्रोध भस्म हो जाते है और अभिमान निर्वासित हो जाता है। रामनाम से ही सब कर्मो का और ससार का बन्धन टूट जाता है और स्वप्न मे भी हमे कोई तकलीफ नही होती। जन्म-मरण का दु ख नही सहना पडता, दरिद्रता कभी भी अनुभव नही होती। रामनाम के उच्चारण-मात्र से सर्वधर्म की प्राप्ति हो जाती है और अज्ञानान्धकार का पटल एक क्षण मे दूर हो जाता है। रामनाम लेने से भव-समुद्र सहज मे तरा जा सकता है, इसमे तनिक भी शका नही।

नारायण का नाम एक ऐसी औषध है, जिससे भवरोग का नाश हो जाता है। इससे देव की कृपा होती है और शीघ्र ही कैवल्यपद की प्राप्ति हो जाती है।

हर समय विट्ठल भगवान के नाम का जप करना ही तमाम सुखो का सार है। यही साधन तमाम साधनो का मूल है। यह याद रखना कि जबतक तनिक भी देहाभिमान और देह का विचार है, तबतक नारायण पास नही आ सकते।

देव का स्मरण करने से मन का तमाम भय टल जाता है और चिन्ता करने का कोई कारण नही रहता। 'कृष्ण' का उच्चारण प्रेमसहित करने से तन मन शान्त हो जाता है।

हर समय मुह से नामोच्चार करने की भक्ति चारो प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ है। इसी नाम की सहायता से मै ब्रह्म के साथ स्पर्द्धा में उतर आया और भक्त से भगवान बन गया।

यदि रामनाम का रस लग जाय तो तुम्हारी देह भी रामरूप ही बन जाय। फिर तुममे और देव मे कोई अन्तर नही रहनेवाला। तुम्हारा मन आनन्दस्वरूप हो जाय और तुम्हारी आखो से प्रेमाश्रु बहने लगे।

चारो वेद पढ चुकने के बाद जो हरिगुण गाने बैठे तो जानना कि वह वेद का अर्थ ठीक समझा है। योग, यज्ञ, दान, आदि चाहे जो करो, परन्तु उन कर्मो को करते-करते यदि कण्ठ मे हरि का नाम रमा रहता है तभी उन कर्मों का फल मिलता है। तू नाना प्रकार की खटपटो की वृद्धि करने के बदले सबके सारस्वरूप एक हरि के नाम को ही अपने गले का हार बनाये रख।

राम का भजन तमाम मधुर वस्तुओ का सार है। वह जन्म-मृत्यु के दु ख का और त्रिविध ताप का नाश कर डालता है। खाते-खाते युग-के-युग बीत गए, फिर भी भूखे-का-भूखा! जिसने रामरस का सेवन किया वह जन्म-मरण के फेरे मे कभी नही पडता।

जो कोई रास्ते चलते-चलते रामनाम लेता जायगा, उसे कदम-कदम पर यज्ञ करने का पुण्य प्राप्त होगा। उसका शरीर तीर्थ और व्रत के उत्पत्ति-स्थान के समान बन जायगा। वह सचमुच धन्य-धन्य हो जायगा। लौकिक व्यवहार के काम करते-करते जो रामनाम का स्मरण करता रहेगा, वह सदाकाल सुख की समाधि का भोग करेगा। जीमते-जीमते जो ग्रास-ग्रास पर रामनाम जपता जायगा, वह खाने पर उपवासी ही है। भोग और योग दोनो प्रसगो पर रामनाम का स्मरण करनेवाला कभी कर्म मे लिप्त नही होता। जो हर समय रामनाम का जप करता रहेगा, वह जीते हुए भी मुक्त ही है।

रामनाम के समान दूसरा पुण्य नही है। नाम तो अमृत का भी सार है, निज स्वरूप का बीज है, और सब गुह्य तत्त्वों मे गुह्य है। नारायण के सिवा और किसीपर भरोसा न रखो।

: ३ :

भक्त और सज्जन

जो अपने हित के विषय मे जाग्रत हो गया है, उसके माता-पिता धन्य है ! उसे देखकर भगवान प्रसन्न होते है ।

जिसका सब अहकार चला गया और जिसमे निदा, हिसा, कपटादिक व्यवहार नही, और देहबुद्धि भी नही, वह निर्मल स्फटिक सरीखा स्वच्छ है । अधिक क्या कहे, उसका सब शरीर चिन्तामणि रूप ही है । वह सब तीर्थो को पावन करनेवाला तीर्थ हो गया है । जिसके दर्शन से मोक्ष-लाभ होता है, जिसका मन शुद्ध हो गया है, उसको माला आदि बाहरी चिन्हो की कुछ भी आवश्यकता नही; एक मन के शुद्ध होने से वह सब भूषणो से मंडित होता है, और जो निरन्तर हरि-गुण गाता है, उसमे अखड आनन्द रहता है। जिसने अपना द्रव्य, देह और मन प्रभु के अर्पण कर दिया है और जिसे कोई आशा नही है, ऐसा पुरुष पारस-मणि से भी बढ़कर है ।

जिसके मुह मे अमृत तुल्य मीठे शब्द है, जिसकी देह प्रभु के लिए ही लगी हुई है, जो पुरुष सर्वाग-निर्मल है और जिसका चित्त गगाजल के समान पवित्र है, उसके दर्शन-मात्र से तापत्रय मिटते है एव विश्राति मिलती है ।

चित्त का अगर समाधान हो गया तो विषवत् दु ख भी सोने सरीखे सुख-कर लगते है । विषय की अति-लालसा बहुत बुरी है । चित्त अगर विक्षुब्ध है तो चन्दन का उबटन भी अग को जलाता है । मन अगर अस्वस्थ है तो सुखो-पचार से भी पीडा होती है ।

जिसको एक देव ही प्रिय है और जिसमे देव के प्रति अखड प्रेमभाव है,

भूमडल मे वही पवित्र और वही भाग्यवान है। उस पुरुष की सेवा देव को पहुंचती है।

जो भगवान के चरणों का चिन्तन करते है, वे सज्जन मेरे प्रिय सगी-साथी है। अन्य लोगो को मै मर्यादापालन-मात्र के लिए मानता हू; क्योकि आखिर वे सब देव के ही तो अंश है। परन्तु मुझे हरि-भक्ति करनेवाले जितने प्रिय है, उतने अन्य नही है।

चौदह लोक जिसके पेट मे है, उसे हमने अपने कठ मे धारण किया है। हमारे घर कुछ कमी नही है। ऋद्धि-सिद्धि हमारे दरवाजे पर सेवा मे तत्पर रहती है, जिसने तमाम राक्षसो को बाध लिया, ऐसा प्रभु हमारे सामने दोनों हाथ जोडता है। जिसके रूपादिक नही, उसे हमने अपनी भक्ति के जोर से सगुण-साकार किया है। जिसके शरीर मे अनन्त ब्रह्माड है, वह हमारे लिए चीटी के समान है। आशा को छोड करके हम भगवान से भी बलवान हो गए है।

संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म भक्तो के नही होते; क्योकि भक्त के अन्दर-बाहर एक देव का ही अनुभव होने के कारण उसका सबकुछ वही होगया है। सत्त्व, रज, तम गुणो की बाधा कभी हरि के भक्त को नही होती। देव से भक्त भिन्न नही है।

द्रव्य-इच्छा जिसके चित्त मे नही है, मान, अपमान, मोह, माया जिसे मिथ्या भासती है, जो सर्व-तत्त्वज्ञान सपादन कर और ज्ञान का अभिमान छोडकर आचरण करता है, ऐसे पुरुष को साधु अकस्मात् मिल जाते है।

जो पर-दु ख और पर-सुख को अपना माने वही साधु है। वही देव को समझता है। मक्खन जैसे अन्दर-बाहर कोमल है, उसी तरह सज्जनो का चित्त होता है। निराश्रित को जो हृदय मे रखता है, अपने दास-दासियो पर जो

पुत्र की-सी दया रखता है, उसे क्या कहू ? वह तो मानो साक्षात भगवान की मूर्त्ति है।

जिसके चित्त मे द्रव्य और दारा (कामिनी और कचन) की इच्छा नही है, उसने ससार पार कर लिया। शुभ-अशुभ से जिसको हर्ष-शोक नही होता, वह जग में जनार्दन होकर रह रहा है। जिसने देव को देह अर्पण कर दिया, फिर उसे कुछ करना बाकी नही रहा।

हम प्रभु के दास कलिकाल से भी डरनेवाले नही है। मृगजाल सरीखे प्रपच मे भटक जायं, यह कभी नही होनेवाला। धूल उडाने से सूरज की किरणे मैली नही होती।

नटो की तरह वेष रखकर हम सब खेल दिखलाते है, मगर उससे हमारे आत्मबोध मे अन्तर नही पडता। बहुरूपियो की तरह कौतुक से हमने खेल जमा रखा है, फिर भी अपने स्वरूप को जानते है। स्फटिक मणि लाल-पीले रगो की चीजो के योग से वैसे रग बदलती है, मगर किसी रग से मिल नही जाती। हम ससार से अलिप्त रहकर निश्चित क्रीडा करते रहते है।

कोई साधनेवाला हो तो साधन दो ही है—पर-द्रव्य और पर-नारी को त्याज्य माने। फिर उसके घर भगवान का भाग्य और सकल सपत्ति आयगी। ऐसे पुरुष का शरीर देव का भडार-गृह है।

जैसे किरणे सूर्य से अलग नही, मिठास शक्कर से अलग नही, उसी तरह मै देव से अभिन्न हू।

सच्चे भक्त परमेष्ठि पद को भी सर्वदा तुच्छ मानते है। सदा हरि का चिन्तन करना ही उनका धन है। इन्द्र-पद आदि भोग, भोग नही भवरोग है। सार्वभौम राज्य से भक्तो को कोई काम नही। पाताल के आधिपत्य को वे केवल दारिद्र्य मानते है। योग-सिद्धि-सार उन्हे असार लगता है। मोक्ष

सरीखा महान् सुख भी उन्हें दुःख लगता है। हरि के सिवा उन्हे सबकुछ त्याज्य लगता है।

जिसने अपने हृदय मे हरि को धारण किया है, उसका आवागमन समाप्त होगया। सारा व्यापार सफल हो गया। हरि हस्तगत होगया कि फिर कोई भय चिन्ता नही। हरि भक्तो मे कोई विकार नही रहने देता।

जिसने भगवान के लिए ससार छोड दिया है, उसपर उनका अतिशय प्रेम होता है। वह ऐसे भक्त के पीछे दौडता है और उसके सुख-दुःख को स्वय सहता है। भक्त का काम है कि वह भगवान का नाम ले, और भगवान का काम है कि वह भक्त के काम करता रहे।

जो अखड भक्ति जानता है, वही देव का पुतला है। उसके विना कोई पडित हो या बुद्धिमान, मेरे नज़दीक दैववान नही। जो नवविध भक्ति जानता है, वही शुद्ध है।

जो मन को विषयो मे जाने से रोककर पीछे लाता है, वह वली है, इस भूमडल मे वही एक शूर है।

स्नान सध्या करता है मगर परान्न खाकर उसे निष्फल करता है, जिसके अन्दर सात्त्विक धैर्य नही, उसे देव कभी नही मिलता।

प्रेम-सूत्र की डोरी से हरि को जिधर ले जाओ, उधर जाता है। भक्त ने अपनी काया, वाचा और मन को भगवान के अर्पण कर दिया है। सारी सत्ता उसके हाथ है। इसलिए आकुल-व्याकुल क्यो होऊं ? वह जैसे रखेगा, वैसे रहूंगा।

जिसका हृदय निर्मल है, वह भावशील धन्य है। जो देव-प्रतिमा का पूजन करता है, सत कहें वहा भाव रखता है, विधि-निषेध न जानता हुआ चित्त में भगवान की एकनिष्ठा रखता है, देव को उसका भाई हो जाना पड़ता है।

जहा-जहा राजा जाता है, तहा-तहा उसका वैभव साथ चलता है। उस राजा को क्या यह कहना पडता है कि "मैं देशान्तर जा रहा हूं, यह वैभव साथ ले चलो।" जिसके हृदय मे नारायण रहता है, उसपर नारायण की पूर्ण कृपा रहती है। इसकी पहचान समता है।

सब जीवो मे भगवान है, इस सकेत को मैं जानता हूं, इसीलिए तीर की तरह तीक्ष्ण उत्तर देता हूँ।

हमारी यह विशेषता है कि अनीति के मार्ग से चलनेवाले जीवो को हम नीति-मार्ग दिखलाते है और जो कोई चूके, उसकी फजीहत करते है। एक परमात्मा का सदा डका बजाने मे क्या बाधा है? इससे अगर सारी दुनिया कुपित हो तो क्या हो जायगा? जहा राम-कृष्ण-नाम सरीखे बाण छूट रहे हो, वहा अविद्या को कहा जगह मिलेगी? जहा सत्य का उपदेश होता है, वहा असत्य नही ठहर सकता।

अब मैं तेरे ही मगल गुणगान करूगा और मस्त होकर हरिकथा कहूंगा। मेरे तमाम भय, व्याकुलता और पाप-पुण्य को निवारनेवाला तू है। आजतक जो भोग भोगे, उन्हे तेरे हवाले करके इस दुनिया मे अलिप्त होकर रहूगा। हम तेरे प्यारे बच्चे है, तेरे चरणो से अलग नही रह सकते।

मुझे किसी चीज के मागने की इच्छा नही, तो फिर मैं ऐसा सकोच किसलिए करू? दिल मे इच्छा रखकर मैं किसी नीच की कभी प्रशसा नही कर सकता।

भगवान को मदिर की सीढी के पास से नमस्कार करने से कैसे उद्धार हो जायगा? साक्षात् भेंट होने से जो होता है, वही सबको अच्छा दीखता है। एक-दूसरे को नजर से न देखकर कोरी बाते करना फिजूल है। इसीलिए मैंने बोलना वन्द करके अन्तःकरण को साक्षी वना रखा है।

हम विष्णुदास कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर है । हम देह-बुद्धि से मृतक और आत्मस्थिति मे जीवित है । भलों को अपनी लगोटी तक दे देगे, मगर दुष्ट के सर पर लाठी जमा देगे । मा-बाप से भी ज्यादा प्यार करनेवाले है और शत्रु से भी ज्यादा हानि पहुंचानेवाले है । हमारे आगे अमृत क्या मीठा है और विष भी क्या कड़ुवा है ? हम पूर्णत. मीठे है, जिसकी जैसी इच्छा होगी, हमारे निकट पूरी होगी ।

जिनके अन्त करण मे दया है, वे ससारी प्राणी धन्य है । वे यहा उपकार के लिए ही आये है । उनका घर वैकुंठ मे है । जो झूठ नही बोलते, देह के प्रति उदासीन है, ओठो पर मधुरी वाणी है, उनके पेट मे पुष्कल अवकाश है ।

मन निष्कपट है, वाणी रसाल है, इसीको लक्ष्मी (ऐश्वर्य) कहते है । ऐसे ही भाग्यवत को जीना चाहिए । जो हमेशा नम्र रहता है, उसका नाम लेने से हरकोई सतुष्ट होता है ।

सबकुछ विष्णुमय है, यह वैष्णव ही जानते है । बाकी के लोग ज्ञान का बोझा व्यर्थ सिर पर लिये फिरते ह । विभिन्न साधन केवल कष्टप्रद है । उन सबके करने मे उलझनमात्र है । अहकार क्षीण होना चाहिए । अभिमान का नाश करना बडा कठिन है । मायाजाल वज्र से भी नही टूट सकता । इसका मर्म केवल हरिभजन से ही मिलेगा; अन्यथा नही ।

मुनि लोग गर्भवास से डरकर मोक्ष को चले गए । मगर हम विष्णुदासों को वह गर्भवास सुलभ है । सारे ससार को प्रभुमय कहकर हमने उसे ब्रह्मरूप कर दिया । पुराणो मे मोक्ष-साधन को कठिन बताया है, मगर हमारा वैकुण्ठ जाने का मार्ग बडा सरल है । हम सब जनो के साथ हमेशा हरि का प्रेमसुख लेते है ।

ईश्वर के सेवक बड़े शूर है, इसलिए काल उनके पैरो पड़ता है । वे घोष मे प्रभु का जय-जयकार करते है, जिससे दोषो के बड़े-बड़े पहाड भी जल

जाते है। जिसके हाथ में शाति, दया, क्षमा के अभग बाण है, भूमंडल में वही बली है।

देह और देह के संबंधियो को निंद्य माने और श्वान-शूकरो का वन्दन करे—ऐसी स्थिति हो जाय, तभी समझना कि 'मै' और 'मेरे' का खात्मा हो गया। मोह के कारण गर्भवास करना पडता है। घर, पैसा और स्वदेश से विरक्त रहना और वन के वृक्षो तथा पशुओ से मिलना चाहिए। 'मै' और 'मेरा' जबान पर भी न आये, ऐसी स्थिति जिनकी है, वे सच्चे साधुजन है।

सारा जगत् हमारा देव है। लेकिन जो बुरे स्वभाव के है, उनको मै धिक्कारता हू। वे काल के मुह मे पडेगे। उनके हित के लिए मै छटपटाता हू। हमारा कोई सखा नही, कोई शत्रु नही, हम सरल वाणी से बोलते है, मगर जिसमें दोष है, उसे वह मर्मभेदी लगता है।

हम हाथ में वीणा और करताल लेकर हरि-चिन्तन मे नाचे, यही सुलभ रहस्य हमको सतो ने बतलाया है। इस कीर्तन मे होनेवाले ब्रह्मरस पर समाधि का सुख न्योछावर कर डालो। इस ब्रह्मरस-पान से हमारे चित्त मे सशय उत्पन्न नही होता, चारो मुक्तिया हम हरिदासो की दासिया हो जाती है। मन इससे विश्राति पाता है, और त्रिविध-ताप क्षणमात्र मे नाश होता है।

हे देव, मान-अपमान तेरी क्षुल्लक सपत्ति है। जिन्हे इद्रियो ने दीन बना दिया है, जो तेरी क्षुल्लक सपत्ति का शौक रखते हो, उन्हे भले तू मूर्ख बनाता रहा। तू ऋद्धि-सिद्धि देगा, मगर उसे स्वीकार कर ले, ऐसे मूर्ख हम नही। अरे ठग, तूने बहुत-से ऐसे लोगो को फसाया है।

जो देह से उदास है और जो आश-पाश का निवारण कर चुके है, उन्हे भक्त समझना। नारायण ही उनका एक विषय है। उन्हे जन-धन, माता-पिता पसद नही आते। ऐसे भक्तो के निर्वाण के समय गोविन्द आगे-पीछे रह-कर उनका रक्षण करता है। कोई संकट नही आने देता। सत्कर्म में सबकी

सहायता करनी चाहिए। उसमें भय माना तो नरक जाना पडता है।

भगवान की ओर द्रुतगति से जानेवाला शुद्ध और धन्य है। परमार्थ का ज्ञान सुनकर जिसके मन में उसका परिपाक होता है, हरिप्रेम जिसके हृदय में हिलोरे लेता है, और स्वहित के लिए जागृत रहता है, ऐसा व्यक्ति ही देव है।

परोपकारी व्यक्ति विशुद्ध गुणो की राशि है। देव उसके अधीन है। उसका धैर्य कभी भग नही होता।

निष्ठावन्त भाव भक्तो का स्वधर्म है। इस निश्चित मर्म से न चूको। भगवान मे निष्काम, निश्चल विश्वास रखो। दूसरे और किसीका आसरा न टटोलो। ऐसे अनन्य भक्त की किसने उपेक्षा की है?

नित्य नाम लेनेवाले की चरणरज लेने की देव इच्छा रखता है और उसे पाने के लिए वह उसके पीछे-पीछे दौडता-फिरता है। जिसके कंठ में वैकुण्ठ-नायक है, उसमें और देव मे क्या कोई अन्तर है?

हरिदास की भेंट होने पर पाप, ताप, दैन्य तत्काल चले जाते है। नाम-सकीर्तन में जो आनन्द-मस्त होकर नाचता है, महादेव उसकी चरणरज की वन्दना करते है।

जो भगवान को नित्य भजता है, वही पडित है। जो सर्वत्र समब्रह्म देखता है, सब जीवो में राम को देखता है, वही प्रभु का सच्चा दास है। उसके दर्शन करने से दोष जाते है।

जिसकी सपूर्ण वासनाएं नष्ट हो गई है, उन्हे ही ब्रह्मरस की मिठास की प्राप्ति होती है। जो सारे भेदभाव की सलग्नता से नितान्त मुक्त होकर, बाह्यज्ञान की उपाधि से रहित होकर, निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने बैठे

है, जिनका मन एक परमात्मा मे स्थिर हो गया है, उन्हे निजात्म-सुख की क्या कमी है ? जो स्त्री-पुरुषो को परमार्थ का भान कराते है, वे ही पुण्यवत और परोपकारी है। मैं उनके यहा उनका पायन्दाज वनकर पडा रहू।

हम हरि के दासो को त्रिलोक मे कोई भय नही, क्योकि हमे सक ो से छुडाने के लिए वह हमारे आगे-पीछे खडा है। हम अपने भावो से उसे जैसा बनाये, वह वैसा बनता है और भक्तो का काम करने के लिए वह ौड़ता आता है। मै मुख से विट्ठल को गाऊ, और निरन्तर उसी सुख मे रहूं।

वैष्णवो मे मुक्ति का दारिद्रय नही और वे ससार की ओर भी नही देखते। गोविन्द उनके चित्त मे डटकर बैठा है। आदि, मध्य, अवसान मे वही है। उन्होने अपना सर्व भोग नारायण के अर्पण कर दिया है, और वे उसीका नित्य मगल-गान करते है।

उनका वल, बुद्धि परोपकार के ही लिए है। उन्होने नामामृत से पेट भर लिया है। वे देव सरीखे ही दयावन्त है। वे अपना-पराया नही देखते। उनका जीव ही देव है। जहा वे रहते है, वही बैकुण्ठ है।

जिसके चित्त मे अहकार नही और प्रपच का त्रास नही, वही त्यागी है। यदि त्यक्त वस्तु का ध्यान रहा तो यह सव विडम्बना है। भले-बुरे का आप स्वय विचार करे, वतानेवाला और कौन मिलेगा ?

जिनको हरि प्रिय है, वह पुरुप हो अथवा स्त्री, मुझे भगवान् के समान है। उस भक्त को मै प्रेम से नमस्कार करूँगा। जिसका अन्त करण निर्मल है, उसीका अन्तर्वाह्य कोमल है। उसीकी सगति मे मेरा सव समय जाय तो इस समय की प्रत्येक घडी मेरे लिए मगलरूप है। मै अपनी जान उसपर न्योछावर कर दू।

हरि के दासो को भय है, ऐसा कोई न कहो। भगवान उनके सामने खडे होकर उनकी इच्छाए पूर्ण करते है। हरि के दासो को किसी भी प्रकार

की चिन्ता हो, यह असंभव है। भगवान उनको अन्न-वस्त्र, आदि सब-कुछ दे देते है।

हरि के दासो के यहां हमेशा सुख का कल्लोल होता रहता है। जहां हरि के दास बसते है, वहा पुण्य फलते है और पापो का नाश होता है। नारायण उनके रक्षण के लिए सुदर्शन लिये फिरते है। हरि के दासो के यहां काम करने के लिए देव सेवक बनकर रहता है।

हमारा स्वदेश तो त्रिलोक है। हमारी निगाह मे कोई दुष्ट नही है। हममे और दूसरो मे भेद नही है। हरिनाम ही हमारा धाम है।

जिस प्रकार बालक का सब बोझा मा पर होता है, उसी प्रकार मेरा सारा बोझा तुम सतों पर है।

वही पवित्र है जो विकल्प की जड़ उखाड फेकता है। जो बाहरी ठाठ दिखाते है, वे गन्दगी से भरे हुए है। जिसकी बुद्धि त्रिकाल सावधान है, वही आत्माराधन कर सकता है। जो संदेहग्रस्त है, वे प्रकृति के बधन मे है। जो समबुद्धि समाधानरूप है, वही अखड ध्यान सच्चा है। अपना चित्त और वित्त उसके हवाले कर दो।

जैसे आकाश सर्वत्र सपूर्ण है, वैसे ही सतों को समझो—गगाजल, अमृत, सूर्य, हीरा, कपूर और चिन्तामणि की तरह विशुद्ध।

भक्तिमान के आगे बलवान का भी बल नही चलता। उसका बल राम है। वह भक्त जहा बैठेगा, वहा सर्वशक्ति बिना बुलाये आती है। वह कही भी रहे, उसकी ओर कौन बुरी निगाह से देख सकता है?

श्रद्धावान भोले भक्त की स्थिति कभी नही बदलती। शेप अपना पुण्य क्षय हो जाने पर भ्रष्ट हो जाते है। केवल विष्णुदास ही गर्भवास के दुःख को नही जानते। विठोबा का नाम ही अच्छा और सच्चा है।

भक्तजन जैसी इच्छा करते हैं, देव वैसे ही नाचता है और उस देव के सुकुमार चरणो का वे वन्दन करते हैं। भक्ति की अभिलाषा में वे मुक्ति को भूल जाते हैं। जिसे मागने की इच्छा नही है, भगवान् उसका साथ नही छोड़ते।

जो कोई मागते नही, उन्हीकी सेवा करने के लिए देव दौडता है। वह दीन रूप धारण करके भक्त की सेवा का ऋण धीरे-धीरे उसीकी सेवा करके चुकाता है। उन भक्तो से वह एक क्षण भी अलग नही रह सकता। सचमुच, जिसमें भक्ति-भाव है, वह देव का भी देव है।

हरिभक्तों के यहा मोक्ष और सिद्धिया दासियां बनकर रहती है।

जो मन, वचन, काया से भगवान के दास हो गए है, उन्हे काम-क्रोध की बाधा नही होती। जो स्वामी पर विश्वास रखता है, वह उसपर अपनी सत्ता चलाता है और उसके समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता बनता है। हम अपना चित्त निर्मल कर लेगे तो वहा गोपाल आकर रहने लगेंगे।

जो अर्थ, देह, प्राण सबकुछ छोड दे, वही हरि को जीत सकता है। मोह, ममता, माया, चिन्ता छोडकर विषयासक्ति को जला डालना चाहिए। लोक-लाज, अभिमान, मत्सर का नाश कर देना चाहिए। शाति, क्षमा, दया से मित्रता कर उन्हें भगवान को बुलाने सविनय भेजना चाहिए। अपनी जाति और विद्वत्ता का अभिमान छोडकर संतों की शरण जाना चाहिए।

जो किसीसे कुछ नही मागता, वही देव को प्रिय लगता है। उसीको देव समझना चाहिए और उसके चरणो मे लीन रहना चाहिए। जिसके मन में भूतदया है, उसके घर चक्रपाणि रहता है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि उसके समान कोई नही है।

जो संतो की सेवा करने में जी चुराता है, उसकी ओर मेरी दृष्टि न पड़े।

जो संतो के चरणो मे अपना भाव रखता है, उससे भगवान् अपने-आप आकर मिलते है ।

साधक की दशा उदास होनी चाहिए । अन्तर्बाह्य कोई उपाधि नही होनी चाहिए । वह लोलुपता छोडे, निद्रा को जीते और भोजन परिमित करे । एकान्त मे अथवा लोकान्त मे प्राणो पर आ बनने पर भी स्त्रियों से न बोले । ऐसा साधक ही गुरु-कृपा से ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

ससार की तमाम माया देव को अर्पण करके जो कोई उसकी भक्ति करेगा, उसकी भक्ति देव को अत्यत प्रिय लगेगी । प्रारब्धानुसार परमात्मा जिसको जिस स्थिति मे रखे, उसमे समतापूर्वक रहना चाहिए । मै तो अपने योग-क्षेम का सारा भार देव के सिर पर डाल दूगा और अपना तमाम ससार उसके चरणो मे समर्पित कर दूगा ।

जो देव की अनन्य भाव से शरण लेते है, उन्हे उत्तम जाति के जानना । जो हरि के शरणागत हुए है, उनके हृदय मे हरि का स्वरूप लबालब भर गया है, और फिर छलक पडता है—उसमे ब्रह्मानुभव की झलक दिखाई देने लगती है ।

हरि के भक्तो को अपने मन मे भय तो लेशमात्र भी नही रखना चाहिए । कारण कि जिनके नारायण सरीखा सखा है, उनके निकट ससार का मूल्य क्या है ? हम अपने मन को हमेशा सतोष-अवस्था मे रखे ।

वैराग्य का उदय सत्सगति मे रहने से होता है । सन्त साधको को अपने संसर्ग से निष्पाप बना देते है ।

सज्जनो के दर्शन मे शुभ वचन सुनने को मिलते है । वे धर्म-नीति का प्रतिपादन करते है । उनके प्रति क्रोध रखने से हित नही होता । अत्यत मृदु रहना ही अच्छा होता है ।

मेरे मन को प्रिय लगें,ऐसे मेरे सच्चे सबधी तो हरि-भक्त ही है। निर्धन रहना ही उनका अहोभाग्य है। उनका धैर्य कभी भग नही होता। जब उन्हे भूख-प्यास लगती है, तब भी वे अपने चित्त में देव का ही स्मरण करते है। नारायण ही उनका धन है।

जो सच्चे कुलीन होते है, वे अपने मन की ऊंची स्थिति से कभी नही डिगते। उनके हृदय मे जो भाव होता है, उसको वे अपने वाह्य आचरण मे प्रकट करते है। उनका विचार और बर्ताव एक होता है। उनमे अपवित्रता का दाग कभी नही लगता। उनके रस मे भग कभी नही पडता। हीरा घन की चोट से नही फूटता।

जिन्होने परमार्थ के रास्ते प्रयाण कर दिया है, जो आ पडनेवाले आघातो को सहन करने का मनोवल रखते है, वे ही सच्चे शूरवीर है।

जो अपने चित्त को शुद्ध भाव से देव के अर्पण करके उसकी शरण मे जाते है, वे देव के समस्त प्रकार के वैभव के मालिक हो जाते है। देव उन्हे अपने से दूर रखता ही नही है।

सतो द्वारा आप मुझे अगीकृत करा दे, तो फिर ब्रह्मज्ञान गिडगिडाता हुआ चला जायगा, परन्तु भगवान के भक्त उसे ग्रहण करने की ज्यादा उतावली नही करते। वे सन्त ब्रह्मज्ञान से अलग भागते-फिरते है और ब्रह्मज्ञान उनके घर में जबर्दस्ती घुस जाना चाहता है। जो ब्रह्मज्ञान अति प्रयत्न करने पर भी नही मिलता, वह उदासीन वृत्तिवालो के गले पड़ता जाता है।

जिसके अन्त करण मे देव का वास हुआ, उसके ससार के ऊपर तो पत्थर पड गए समझो। देव उसके सर्वस्व का नाश करके उसे अपनेसे अलग नही रहने देता। उसकी वाणी को देव असत्य, आदि गदगी मे नही पडने देता। जिसको देव की सगति हुई, उसका मनुष्यपना गया। देव उसे किसी प्रकार की आशा या ममता के पाश मे धने नही देता। जिसे देव की प्राप्ति हो गई है, वह ऐसा

सुवक्ता हो जाता है कि सारे जगत को अपने वश मे कर लेता है। ये सब देव-प्राप्ति के लक्षण है।

जिसका चित्त हमेशा संतुष्ट और निर्मल रहे, और जो योग्य प्रसंग को तथा योग्य काल को पहचानता हो, उसे सन्त जानना।

मै वन मे जाकर रहूगा और जिन-जिन वृक्षो के पत्ते खाने-योग्य होगे उन्हे तोडकर खाऊगा। शेष सारे समय विट्ठल का चिन्तन किया करूगा। वृक्षो की छाल का वल्कल बनाऊगा और इस प्रकार देहाभिमान को जला डालूगा। प्रतिष्ठा को वमन (उल्टी) के समान समझकर विट्ठल प्राप्ति के लिए एकान्त सेवन करूगा। जहातक हो सके, मै प्रपच के ति प्रेम नही रखूगा और अरण्यादि स्थलो मे रहकर एकान्तवास का अभ्यास करूंगा। जिसका ऐसा निश्चय है उसके प्रापचिक दु ख-दारिद्रय का नाश हो जाता है।

जिसने यत्नपूर्वक उपाधियो का नाश कर दिया हो, उसने स्वबल से देव को हस्तगत कर लिया समझना, जिसने धन और जन का त्याग कर दिया हो, वह स्वय जनार्दन रूप हो गया है। इसमे उतावली काम नही देती। इसके रस की प्रतीति अन्तरग के अनुभव से होती है।

हरिभक्तो को किसी भी प्रकार का भय तो होता ही नही। उन्हे कोई चिन्ता भी नही होती, क्योकि भगवान उनके समस्त दु खो का निवारण करते रहते है। प्रभु उनके शरीर से दु ख-दारिद्र्य का स्पर्श भी नही होने देते। जो समस्त जगत् मे व्यापक है, वही एक विश्वम्भर मेरा सखा हो गया है।

जिस दिन मुझे हरिभक्तो का दर्शन होता है वह दिन मुझे दिवाली-दशहरा के समान है।

भक्त जो कुछ बोलता है उस तरफ भगवान ध्यान देते है। भगवान् अपने भक्तो की भक्ति से बध गये है।

वेदो मे ईश्वर के विषय में असीम लिखा है। सार इतना ही है कि भगवान की शरण जाना और निष्ठापूर्वक उसका नाम लेना। अठारह पुराणो का भी यही सिद्धान्त है।

सच्चे सन्त काम-क्रोधादि का अपने हृदय से स्पर्श भी नही होने देते।

जिसके मन में हरिनाम बस गया है अकेला वही तरता है, और सब उसकी वन्दना करते हैं।

अन्तर मे दयाभाव रखकर लोकोपकार करना ही जिसका कुलधर्म हो, उसके हाथ में सब साधनो का सार आ गया समझना।

जिन्होने सबकुछ त्याग दिया, वे तो सदा के लिए सुखी हो गए। अग्नि को किसी प्रकार की अपवित्रता नही छूती। सत्यभाषी लोग सासारिक काम करते हुए भी ससार से अलिप्त रहते है। परोपकारी मे आत्मस्थिति का उदय हुआ समझना। जो पर-गुण-दोष-विषयक टीकाएं न तो करता है और न सुनता है, वह जगत् मे रहते हुए भी जगत् से अलग रहता है॥ परमार्थ प्राप्ति का सच्चा मर्म समझे बिना सारा परिश्रम व्यर्थ है।

जिसमे वास्तविक ब्राह्मी-स्थिति का उदय हुआ है, उससे तो एक तिनका भी नही टूटता, तो फिर जीव का वध तो कर ही किस प्रकार सकता है?

जिनके ससर्ग से प्रेम में वृद्धि हो, प्रेम हो तो दूना हो जाय, उन्हें ही मैं सन्त कहता हू; और जिनके ससर्ग मे आने से ईश-प्रेम घट जाय, उन्हें मै दुर्जन और काल-मुख कहता हू।

परमार्थ-फल का सेवन करनेवाला कभी किसीके साथ वाद-विवाद मे नही उतरता।

सन्तो की संगति ही सुख है । भूतमात्र में परमात्मा समान रूप से व्याप्त है, फिर भी विषमता को सच मान लेना ही दुःख है ।

जिस प्रकार कठोर श्रम करनेवाले किसान की अच्छी-से-अच्छी फसल होती है, उसी तरह जो परिश्रम उठाकर भजन करता है, उसे ही हरि की प्राप्ति होती है । अपना हित करना-न-करना आपके हाथ मे है ।

जो एक बार भी हरि को जीत ले उसका सुख सबसे अधिक समझना ।

जिन्होंने अपना तन, मन और धन श्रीहरि को समर्पित किया होता है, उन्हीके पास वह रहना पसन्द करता है । जो हरि की कीर्ति का वर्णन करते है, वे समर्थ है । शेष सब, चाहे वे चक्रवर्ती हो, कगाल और दयापात्र है ।

ब्रज के ग्वाले भक्त और निरभिमानी थे, इसीलिए उनको देव की प्राप्ति हुई ।

जो भगवान को नही भूलते वे ही सचमुच उदार और दानवीर है । इससे उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल जाती है ।

हरिनाम-स्मरण करनेवाले अविनाशी-पद को पाते है और उन्हे सब प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है । सब सुख का अनुभव उनके अन्त करण में होता रहे, तो फिर उन्हें बाहरी सुखो की दरकार भी क्यों रहे ?

चाहे दुराचारी हो, मगर जो वाचा से हरि का नाम लेता है तो मै मन-वचन-शरीर से उसका दास हू । हरि के गुण गाने मे चित्त मे भाव न हो तो भी कोई आपत्ति नही । जो अनाचार करता है, मगर वाचा से हरि के नाम का उच्चार करता है, अपनेको हरि का दास कहता है, वह धन्य है—चाहे शुद्ध कुल का हो या चाडाल घराने का ।

बुरे कुलवाले लोग भी अनुतापपूर्वक हरि-स्मरण करने से मुक्त हो गए ।

भक्त और सज्जन

हरिभक्तिरहित बडप्पन को आग लगे। दुष्ट मुझे दिखाई न दे। अभक्त ब्राह्मण मानो रांड का पुत्र है। उसका मुह जल जाय। चमार वैष्णव हो तो उसकी मा धन्य है। उसके दोनो कुल पवित्र है। यह तो पुराणो ने ही कह रखा है, मैं अपनी तरफ से नही कह रहा हू।

जाति और कुल की देव को कोई कीमत नही होती। जो कोई उसका अनन्य भक्त होकर रहता है, उसके साथ वह भी अनन्य भाव से वर्तन करता है।

: ४ :

भगवान और उसकी भक्ति

एक भगवान के सिवा और किसीकी स्तुति करना हमारे लिए ब्रह्म-हत्या के समान है। हम विष्णुदासो का एकविध भाव है। हम दूसरे को देव कभी नही कहनेवाले। अगर स वचन से पलटू, तो मेरी जबान शतखंड हो जाय। अगर मन मे किसी अन्य देव का सकल्प लाऊ, तो मुझे जग के सब पाप लगे।

सतो का अतिक्रम करके देवपूजा करना अधर्म है। देव को सुनाये गए मंत्र और चढाये गए पुष्प, देव के सिर पर मारे गए पत्थरो के समान है। यदि कोई अतिथि को त्यागता है और देव के लिए नैवेद्य तैयार करता है, तो ऐसी भेद-बुद्धि से की गई देव की सेवा सेवा नही, ताड़ना है।

सतो की सेवा करनी चाहिए। कारण, वह देव को पहुचती है। उससे सब कार्यों की सिद्धि होती है। भक्त देव के ही अग है। धर्म का मर्म यही है।

भगवान् का आश्रय लेने पर तुम्हे मुक्ति की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। तब तुम्हारे अन्दर दैन्य-दारिद्र्य भी नही रहेगा।

देव मेरे आगे-आगे रहकर सारे भोग भोगता है। मै सब कर्तृत्व-भोक्तृत्वरहित होकर यो ही बैठा हू। आजतक मेरे पीछे लगे हुए शुभाशुभ कर्मो के सुख-दु ख का निरसन 'करने और भोगनेवाला देव ही है,' इस ज्ञान से होगया।

'जीव और शिव' का खेल कर्ता ने लीला से ही किया है। सारा आभास

अनित्य है। सचमुच तो जगत् विष्णुमय है। वर्णधर्म खेल है। सबकुछ एक-ही से बना है, उसमें भिन्न-अभिन्न का व्यवहार कैसा ? यह निर्णय साक्षात वेद-पुरुष नारायण ने किया है। उसी प्रसाद का रसानन्द मुझे प्राप्त हुआ है। इसलिए भगवान के चरणो के पास ही मेरा वास होगा। उनसे मैं कभी जुदा न होऊगा ।

नारायण की कृपा से विषवत् दु ख अमृतवत् सुख समान हो जाता है ।

शक्तिमान हरि के सेवक होने से हम भी शक्तिमान हो गए हैं। ससार को लात मार दी। काम-क्रोधादिक छहो ऊर्मियो को नष्ट कर दिया। जन, धन, तन को तृणवत् कर दिया। अब हम मुक्ति के मस्तक पर हैं।

इस कलियुग में दूसरा उपाय नही चलता। भगवान के चरणो की ही शरण गहनी चाहिए। उसीके पेट में सब पुण्य है, और उसीसे सब पापो का नाश होता है। उसे लेने के लिए समय और काल देखने की आवश्यकता नही, न किसी त्याग की ।

खाने को न मिले; सन्तान न बढे, मगर नारायण की मुझपर कृपा रहे। मेरी वाणी मुझे ऐसा उपदेश करती रहे और दूसरे लोगो से भी यही कहती रहे। शरीर की विडम्बना हो या विपत्ति आवे, मगर मेरे चित्त में नारायण रहे। यह सब प्रपच नाशवत है, इसलिए गोपाल को हमेशा स्मरण करने में ही हित है।

भाव ही भगवान है ।

जहा-जहा जो-जो भोग प्राप्त हो, वे सब हरि ही भोगता है, ऐसा समझ कर हरि की सेवा में समर्पण करना चाहिए। इसीको सहज पूजा कहते हैं। निरभिमान रहना चाहिए। जीव ने कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान न रखा तो देव उससे अलग नही

आगे-पीछे, अन्दर-वाहर, सर्वत्र अगर देव ही है तो हरि के दास को भय किसका ? देव के पास काल का वल नही चलता। उस धनी के यहां कमी किस वात की है ?

देव अपने एकनिष्ठ भक्त का भार अपने सिर पर लेकर उनके योग-क्षेम की चिन्ता रखता है। अगर भक्त मार्ग से भटका, तो वह उसका हाथ पकड़कर सरल मार्ग दिखा देता है।

एक भगवान के चिन्तन से क्या नही होता ? भगवान का चिंतन सर्व-साधनो का सार है और वह भवसिंधु से पार उतारनेवाला है।

जिस पद की हम इच्छा करेंगे, भगवान हमे उस जगह ले जाकर पहुचा देगा। उसका चिन्तन करे तो वह चित्त को अपने स्वरूप से ओतप्रोत कर देता है। इच्छित फल की प्राप्ति के लिए शरीर मे भगवच्चिन्तन का वल चाहिए। तव सिद्धि उसकी चरण-सेवा करती है।

भगवान की चाकरी करने से इच्छा पूर्ण होती है और आत्मा को अपना परम पद प्राप्त होता है।

भगवान ही मेरा देव और भगवान ही मेरा गुरु हो गया है। वह मेरी अभिलाषाएं पूर्ण करता है और अन्त में अपने पास बुला लेता है। भक्तों के पीछे-आगे खडा रहकर वह उन्हे सभालता है, और उनपर आनेवाले सकटों को दूर करता है और उन्हे योग-क्षेम देता है। उन्हें रास्ता दिखलाकर मोक्ष-मार्ग पर लगाता है।

वहुत-से विद्वान तर्कशास्त्री होते है, मगर भगवान का पार उन्हें नहीं मिलता। वहुत-से पाठ-पाठान्तर करने से और अर्थों का विचार करने से भी भगवान की महत्ता उन्हे नही अनुभूत होती। भोलेपन के विना भगवान का लाभ नही होनेवाला। ज्ञान के माप से उसे कितना ही मापो, व्यर्थ जायगा।

धीरज धरने से नारायण सहायक होता है। वह अपने दासो पर श्रम नही पडने देता, और चिन्ता भी नही करने देता। हम आनन्द से कीर्त्तन करें और हरि के गुण गाये।

सचित कर्म जल सकते है। भगवान के चिन्तन से पापमल तथा ताप-जाल नही रहने पाता।

भगवान का ध्यान अन्त करण मे करना, यही उसका मुख्य पूजन है। इसके अलावा सब उपाधियां पाप है। सहज स्वरूप स्थिति ऐसी स्थिति है जिससे कभी जी नही ऊबता।

ज्ञान की बाते कहना भी कठिन है, तो हृदय मे अनुभव कैसे आ सकता है ? इसलिए अज्ञ जीव अगर हरिभजन और हरिकथा मे सम्यक् प्रकार से चित्त लगाये, तो उनके दु ख का परिहार होगा। वन मे जाने से समाधान नही होता।

उदर-पोषण के योग्य काम करना चाहिए, परन्तु विशेष आत्मीयता तो नाम की ही रहे। चित्त मे भगवान का ध्यान धरने का ही काम करें। देव की सेवा मे जुड जाने की ही भावना भाग्यवानो को करनी चाहिए और यह सारी बल-बुद्धि खर्च करके करनी चाहिए।

भगवान का नाम लेकर भीख मागना लज्जास्पद है। ऐसा जीवन नष्ट हो जाय। भगवान ऐसे लोगो की हमेशा उपेक्षा ही करते है। देव के प्रति भक्ति-भाव हुए विना, जीव को हरि के समर्पण किये विना, बाहरी भक्ति दिखलाना व्यभिचारवत् है। विषयेच्छा से दीन होकर दुनिया को बोझिल करना ही अभाग्य है। इसका कारण देव के प्रति अविश्वास है। सच्ची श्रद्धा हो तो विश्वम्भर क्या-क्या न कर देगा। उसके चरणो को दृढता से पकडना ही सार है।

हरिभक्ति के भावबल से हरि के भक्त अविनाशी ह । योग, भाग्य, व शक्ति उनके घर चलकर आती हैं ।

हे देव, अगर भक्ति-सुख का अनुभव नही आया तो मैं ज्ञान लेकर क्या करू ?

अब देव के अतिरिक्त मुझे कुछ नही बोलना, यही एक नियम कर लिया हैं । काम क्रोध को देव के अर्पण कर दिया हैं ।

जो हीरा घन की मार से नही फूटता, वह अच्छी कीमत से अगीकार किया जाता है, उसी तरह जो जग के आघात सहन करता हैं उसको देव अपना बना लेता हैं ।

जहा अपनी मान-प्रतिष्ठा है, वहा अपनी अप्रतिष्ठा करके पचभूतात्मक नष्ट देह की विडम्बना कर डालनी चाहिए। ऐसा करने से घर-गृहस्थी कैसे रहेगी ? जिसका हरि से प्रेम है वह तद्‌रूप हो जाता हैं ।

बिना भक्ति का ब्रह्मज्ञान बिना शक्कर के दूध के समान है । बिना नमक के अन्न रुचिकर नही होता । अन्धे को कुछ सिखाओ तो वह उसका नाममात्र जानता है । तबूरे का सार भाग उसके तार है ।

हम जैसी भावना करते हैं वैसी देव की देन होती है, इसलिए यत्न करने से क्या नही हो सकता ? कृपासिन्धु भगवान् अपने दास की उपेक्षा नहीं करते; वह उसके अन्तर की व्यथा जानते हैं । छोटा बालक मा से मागना नही जानता मगर मा उसके हृदयभाव को जानती हैं; और उसे किसी तरह का दु.ख न हो, ऐसा करती हैं । मुझे इसका अनुभव हैं; कोई अन्यथा बोले तो मैं नही मान सकता ।

है, सुखद संगतिवाला, और काल का भी काल है। वह निज भक्तो का शरण-स्थान है, माधुरी का माधुर्य, आनन्द का कौतुक और प्रीति का प्यार है। वह प्रभु, भाव का निजभाव और नाम का भी नाम है। वह सव सार-का-सार है।

यदि तू ही नही मिला तो कोरे ब्रह्मज्ञान का मै क्या करू ? ऋद्धि, सिद्धि, शास्त्रनिपुणता तेरे विना भार है।

हे प्रभो, मै तेरी चरण-सेवा साधने के लिए जन्म लू। हरि नाम कीर्त्तन, संतपूजा किया करू और तेरे दरवाजे पर लोटा करूं। आनन्द से परिपूर्ण रहकर मै कही भी रहू। सुख-दु ख की मुझे इच्छा नही। न कोई दूसरा उपाय करूं, न आशा रखू। सव प्रकार से उदासीन रहू तो जैसा-कहू-वैसा काम करनेवाली दासी वनकर मोक्ष मेरे घर रहेगा।

ज्ञानावस्था से मै वहुत डरता हू। हे नारायण, वह मेरे निकट न आवे। आपके भक्ति-सुख की समता कर सके ऐसी त्रिलोक मे कोई चीज नही है। अर्ध-निमिप सत्सगति का कल्प के अन्तपर्यन्त वैकुण्ठ मे रहने के समान है। सत्संग करनेवाले के पास मोक्ष आदि पद वेचारे विश्रान्ति लेने के लिए आते हैं। मुझे अखण्ड भक्ति दे।

चातक पृथ्वी पर भरे हुए जल की ओर न देखकर प्राणो को कठ मे रखकर मेघ की वाट जोहता है। सूर्य से विकसित होनेवाली कमलिनी चन्द्रामृत न लेकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती है। गाय अपने बच्चे को छोड़ दूसरे वछडे को अपने पास नही आने देती। पतिव्रता को सर्वभाव से अपना पति ही प्रिय होता है। इसी प्रकार एकविध-भाव से धैर्यपूर्वक प्राणोत्सर्ग होने पर भी नियम न छोडने का दृढ निश्चय हो, तभी मेरे विठोवा की वात छेड़े।

भक्त के अन्त करण का भाव देव जानता है और उसे पूर्ण करने का उपाय करता है। कहने-मागने की जरूरत नही है। जी-जान मे धैर्यपूर्वक उसका अनुसरण करके अविनाशी फल की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। वालक

नही मागता, फिर भी मां उसे बुलाकर भोजन देती है। उस देव का आश्रय लेकर कितने ही पगुओ ने गिरि पार कर दिये है।

अनन्य भक्त अज्ञानी भी हो, देव को अतिशय प्रिय है। उपमन्यु, ध्रुव और प्रह्लाद क्या जानते थे? उनके चित्त मे नारायण बसा हुआ था। प्रभु स्वय भोला भक्त है और हमने उसके चरण पकड़ रखे है।

भक्तिपथ बहुत सरल है, वह पुण्य-पाप रहित है, इसलिए जन्म-मरण नाशक है। भक्तिपथ पर खडा हुआ विठोबा हाथ उठाकर बुलाता है और अपने मुह से कहता है कि भक्तो का सारा भार मैं उठाता हूं। वह अपने भाविक भक्तों को पार उतारता है और कुतर्कियों के सिर फोडता है।

हमारा मन धीरज नही रखता, वरना भगवान के पास क्या कमी है? हरि पर सब बोझा डालने पर वह दास की उपेक्षा नही करता।

द्रव्योपार्जन के लिए हम जैसी चेष्टा करते है, वैसी हरि-प्राप्ति के लिए करनी चाहिए।

भगवान के चरण तमाम तीर्थो के उत्पत्ति स्थान है और लक्ष्मी जिन का सेवन करती रहती है, सब संत अपने अन्तिम विश्रान्ति-स्थान के रूप में उन्हें ही माग लेते है।

देव को अपना बनाये बिना जीव को सुख नही मिलनेवाला। देव के बिना सबकुछ मायिक और दुःखद है। उसके प्रारम्भ से अन्ततक दु.ख ही भरा हुआ होता है।

लोगों की स्तुति करने से अपने आयुष्य की बरबादी होती है। ऐसा करनेवाला नारायण मे विमुख हो जाता है और उसमे से सब प्रकार के

पापो की उत्पत्ति होती है । देव की स्तुति के सिवा कुछ भी सुनने से पाप लगता है ।

भगवान को भक्तो की अटपटी वाणी भी अत्यन्त प्रिय लगती है । वह उनकी सम्पूर्ण इच्छाए पूर्ण कर देता है ।

चित्त के मत्सर को दूर करना और सुखरूप होकर रहना यही विश्वम्भर का सच्चा पूजन है ।

यश, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, इन छह गुणो से युक्त केवल भगवान है ।

देव के पास मोक्ष की पोटली बधी हुई नही है कि जिसमे से वह मोक्ष निकालकर तुम्हारे हाथ मे रख दे । विषयो से मन और इन्द्रियो को खीच लेना और इस प्रकार निर्विषयी हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है ।

राम अपने भक्तो के पीछे-पीछे दौडते है । राम के सेवक उनके गले में रस्सी बाधकर जहा चाहे ले जाते है । राम अपने सेवको को परमार्थ के रास्ते से भटकने नही देते । वे कभी असावधानी से गलत रास्ते चले जायं, तो राम उनका हाथ पकडकर उन्हें परमार्थ के सम्यक्, मार्ग पर लगा देते है ।

नारायण अपने अनन्य भक्तो की इच्छा रखते है, और यदि वे रक हों तो उनको अपनी पदवी तक देकर निहाल कर देते हैं ।

देव का स्वभाव ऐसा है कि जबतक अपना काम पूरा न हो जाय तबतक स्वयं क्या करना चाहता है, इसकी किसीको खबर तक नही होने देता ।

नारायण जब कृपा करेंगे तब यह प्रापचिक ज्ञान ही ब्रह्मरूप बन जायगा । जब देव अपना स्वरूप बता देगा तब जीव-दशा में पडा ही नही रहा जायगा ।

देव को पहचानने का साधन एक भक्ति-भाव ही है। सके सिवा और किसी साधन से उसकी प्राप्ति नही हो सकती।

जिनमे शुद्ध भाव है उनके लिए देव सर्वत्र मौजूद है, और जो भावहीन है उनके हाथ वह कभी आनेवाला नही। देव-रहित कोई स्थान है ही नही, ऐसा जिसका अनुभव हो गया, वह स्वय देव-रूप हो गया।

नारायण का स्वभाव ऐसा है कि अपने भक्तो के सकट, स्मरण करते ही टाल देते हैं। अनन्त भगवान फल की सिद्धि पर्यन्त अपने भक्तो की मदद करते हैं और उन्हे निर्धारित स्थान तक पहुचा देते हैं। भक्तों का तो इतना ही कर्त्तव्य है कि सर्वतोभाव से नारायण की शरण ले।

भगवान पूर्णकाम है। उनके गुणो मे सबसे मुख्य गुण दया है। दया के तो मानो वह समुद्र ही है। वह अपने भक्तो को किसी प्रकार का श्रम या कष्ट नही करने देते। उनकी उदारता देखे तो स्वय लक्ष्मी को उनकी दासी पाते हैं; उनकी शूरवीरता देखे तो कलिकाल को उनसे परास्त पाते है; चतुर इतने कि सब गुणो की राशि हैं, पागल इतने कि जिसमे भाव देखा कि उसके सेवक बन गए। अपने भक्तो का जूठा खा जाने का उन्हे बडा शौक है। वह जीव-मात्र मे व्याप्त हैं, फिर भी उन्हे कोई जान नही सकता। वह सबसे श्रेष्ठ है।

: ५ :

भजन और कीर्त्तन

युक्ताहारादिक किन्ही साधनो की आवश्यकता नही है। तर जाने का अल्प साधन नारायण ने दिखलाया है, वह यह कि कलियुग मे कीर्त्तन करो, उसीसे नारायण मिल जायगा। लौकिक व्यवहार छोडने का और वन मे जाकर भभूत लगाकर दड लेने की जरूरत नही है। हरि के नाम को छोड-कर सब उपाय व्यर्थ दिखते है।

हरि-कीर्त्तन से हरि की कृपा का प्रसाद मिलता है। वह दूर हो तो निकट आ जाता है। मै यह मर्म तुमको तुरन्त वतलाये देता हूँ कि तुम अपना मन अपने हित के मार्ग मे लगाओ।

प्रभु-कीर्त्तन को छोडकर मै शाति, क्षमा, दया क्या जानू ? अमृत के सागर मे डूवकर शरीर के प्रति चिन्तित क्यो रहू ? मुझे जग मे रहकर आनन्द है, मै वन मे एकात-सेवन क्यो करू ? मुझे विश्वास है, भगवान मेरे साथ चलते है।

हरि के नाम के गीत जैसे हम गाते है उसी तरह उन्हें चित्त में भी रखना चाहिए। यही वडा मुश्किल है। अन्न देखने से भूख नही मिटती। हरि की कथा चित्त मे रखने के लिए ही सुनी जाती ह। खाये विना भूख नही मिटती।

जो देव तप, व्रत, दानादि, वडे-वडे साधनो से नही मिलता, वह नाम लेने से दौडा आता है। जिसके पेट मे चौदह भुवन है वह भक्त के कण्ठ मे रहता है। श्रीहरि भक्तो का ऋणी है। उसे शास्त्रो-पुराणो या योगियो के

ध्यान मे नही पाया जा सकता। वह तो भक्तो के कीर्त्तन मे आकर आनन्द से नाचता है।

हरि-कथा देव-ध्यान ही है। कथा सर्वोत्तम साधन है। कथा सरीखा पुण्य नही है। भावसहित नारायण का नाम लेने से एक क्षण मे महादोष जल जाते है।

जो भाव से कीर्त्तन करता है, वह स्वय तरकर औरों को तिराता है और नारायण से जा मिलता है, इसमें संशय नही।

जो पवित्र हरिकथा को सादर गायेगे-सुनेगे, उनके दोषों के पहाड़ जल जायगे। हरिभक्तो के पास समस्त तीर्थ पवित्र होने के लिए आते है, और सर्व पर्वकाल उनके पैरो तले रहते है। हरिकथा का माहात्म्य अनुपम है। ब्रह्मा भी उसके सुख का वर्णन नही कर सकता।

जो कोई करताल, मृदग आदि लेकर प्रेम भरे अन्त करण से हरिनाम कीर्त्तन करता हुआ गाता-नाचता है उसे तद्रूप ही समझना चाहिए।

हरि-भजन सरीखा आनन्द तो स्वर्ग मे भी नहीं है। हरिनाम-स्मरण करने से चारो प्रकार की मुक्तियो की प्राप्ति होती है।

यह हरिकथा समस्त त्रैलोक्य मे ब्रह्मरस के रूप मे भरी है। विष्णु भगवान उसे हाथ जोड रहे है; शिवजी उसकी चरणरज को नमस्कार कर माथे पर चढा रहे है। उस हरिकथा ने कलिकाल को वन्दी-गृह में डाल रखा है।

जो कोई हरि-कथा गायगा, उसे ससार के दु खो का स्पर्श भी नही होनेवाला। उसके लिए तो सारा ससार ही सुखरूप हो जायगा।

हरिनाम-स्मरण से पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते है। श्रीहरिनाम संकीर्त्तन की जहां गर्जना होती है, वहा सब पाप जल जाते है।

जप-तप आदि साधन करने ने जिसकी प्राप्ति नही होती, वह हरि हमको उसके गुण गाने से मिल गया है।

राम-भजन करने मे ही जीवन की सार्थकता है। राम के सिवा सब मिथ्या है। राम के सिवा शेष सब नाशवत है। राम के नाम के सिवा और किसीमें कुछ सार नही है।

अन्य समस्त मीठे रस किस काम के ? उनसे इस विकारी देह का ही रक्षण होता है। परन्तु राम का भजन करते हुए सूखी रोटी खायें तो भी वह दूध, शक्कर, मक्खन सरीखा स्वाद और पुष्टि देती है।

हरि-कीर्तन करनेवालो को उदर-पोषण की एव तरणोपाय की कोई चिंता करनी ही नही चाहिए; कारण कि इन दोनो बातो का दायित्व देव ने अपने सिर कभी का ले रखा है। देव अपने पीताम्बर से भक्तो का रास्ता साफ करता चलता है। वह अपने भक्तो के घर उनका दासत्व करता रहता है। जिन्होंने मन, वाणी, और शरीर द्वारा अपना तमाम भाव देव को समर्पित कर दिया है, उनका सारा भार देव अपने ऊपर लेता है और उनका सारा व्यवहार निभाता है। हाल की वियाई हुई गाय जैसे अपने बछडे की ओर दौडती है, वैसे ही देव अपने भक्त की मदद को दौडता है। 'मुझे देव की प्राप्ति होनी ही चाहिए' ऐसी उत्कठा जिसमें जागी हो, उसे सच्चा भाग्यवान जानना।

: ६ :

सगुण-निर्गुण-विचार

देव भक्तो को अपने नजदीक रखता है और दुर्जनो का सहार करता है। चक्र-गदा-धारी देव का यही धवा है। निराकार ही साकार हो गया है। जिसकी जैसी इच्छा होती है, भगवान उसे पूरी करते है।

शास्त्रो का जो सार और वेदो की जो मूर्ति है, वह हमारा प्राणसखा है। सगुण और निर्गुण जिसके अग है वही हमारे साथ क्रीडा करता है।

राम अतिशय प्रेम का भूखा है। इसीका उसके यहा अकाल है।

सतो का अनुभव-सिद्ध ज्ञान शब्दज्ञानियो को स्वीकार नही ! सत तीव्र सगुण भक्ति-भाव धरकर तर गए; मगर वह तार्किको के अनुभव मे नही आया और उन्होने सगुण देव का निषेध ही किया।

शुद्धचर्या संत-पूजा है। इसमे धन या वित्त नही लगता। सगुण भक्ति के मार्ग से गए तो हमारा विश्रान्ति-स्थान, हरि का सगुण रूप, अपने-आप भक्त को खोजता जाता है।

सतो की सगति से देव को सुख हुआ, इसीलिए वह उनकी सेवा करता है। निर्गुण देव सगुण साकार होकर सतो की पूजा करता है और उनको दण्डवत करता है।

किसी गाव की सीमा बनाने से पृथ्वी के खण्ड नही हो जाते। भक्ति के लिए अरूपी परमात्मा हरि व हर के सगुण रूप मे आया।

हमे मोक्षपद तुच्छ है। हमे तो भगवत्-चिन्तन के लिए युग-युग मे जन्म

लेना है। हमारे लिए देव ने साकार रूप धारण कर लिया है, अब हम उसे निराकार नही होने देगे।

यह सच है कि सब जीवो में देव अवश्य है, परन्तु सगुण देव के साक्षात्कार के बिना कोई नही तर सकता। सबमे ज्ञान है, परन्तु भक्ति के बिना वह ब्रह्म नही हो सकता।

देव पाषाण का है और जिस सीढी पर खडे होकर उसकी पूजा करनी है वह भी पत्थर की है। भाव ही सार है। जिन्होने इसका अनुभव किया है, वे स्वय भगवान हो गए है।

ईश्वर सर्वभाव से भक्तो के समागम मे रहता है और कहे विना उनके सब काम करता है। वह उनके हृदय-सपुट मे रहता है और छोटे-से सगुण आकार मे बाहर उनके सामने खडा रहता है। भक्त कुछ मागेगे इस आशा मे वह उनके मुह की ओर देखता रहता है और उनके मनोरथो को तत्काल पूरा करता है। परन्तु भक्त अपना जीव-भाव देव के चरणो में अर्पण करके कुछ भी नही मागते।

जिन्होने देव को निराकार अवस्था से साकार अवस्था मे लाकर रख दिया है, उनको देव का बाप जानना। देव और उसके भक्त परस्पर बडे ही निकट सबध से जुडे हुए है।

देव कहता है कि मै तुमसे दूर हू ही नही, तुम जैसा भाव मेरे प्रति रखते हो, वैसा ही मै तुम्हारे प्रति रखता हू, और उसी रूप से तुमको प्राप्त होता हू।

मजीरे होते तो है दो, परन्तु उनमे ध्वनि तो एक ही उत्पन्न होती है। उसी प्रकार सगुण और निर्गुण में कोई अन्तर नही है।

स्फटिक शिला मे अपना कोई रग नही होता, परन्तु वह पृथक्-पृथक् रंगो को धारण करती दिखाई देती है, फिर भी सब गो से अलिप्त रहती है।

उसी प्रकार देव सब प्रकार के काम करता है और स्वयं उनसे निर्लेप रहता है। जैसा उसके भक्तों के मन का भाव वैसा वह हो जाता है और उनकी वासनाओ को पूरा करता है।

द्वैत का निरसन होने पर एक हरि ही अवशेष रहता है, तब उसे ढूढने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नही रहती।

अपनी स्वरूप-विस्मृति में सोये हुए जीव, तू मूलतः परमात्मा स्वरूप है। यह आत्मिक दृष्टि के खुलने पर तेरी समझ मे आयगा।

समस्त जगत् को विष्णुमय जानना ही वैष्णवो का धर्म है। भेदाभेद मतविचार, केवल अमगल भ्रम है।

मैंने चर्म-चक्षुओ से न देखकर भी ज्ञान-दृष्टि से सबकुछ देख लिया है। जिह्वा ने जो रस नही चखे वे सब आत्म-रसना ने चख लिये है। न बोले हुए बोल पारमार्थिक परावाणी ने सब प्रकट कर दिये है। स्थूल कानो से जो नही सुना, वह तत्व मेरे अन्तर्मुख मन में आ गया है।

(ईश) स्वरूप की याद करने से जीव और स्वरूप दोनो एक हो जाते है, उसमें क्षणभर का भी वियोग नही होता। सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसी भावना ही पूजा है। भगवान को एकदेशीय मानकर पूजना व्यर्थ है।

'सर्वत्र मैं ही भरा हुआ हूं'—भगवान ने अपने स्वरूप की यह पहचान करा दी है। इसलिए मैं उसके स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नही देखता। मेरी स्थिति और मति देव से पृथक् नही है।

भगवान जिसका सखा है, उसपर सारी दुनिया कृपा करती है। ऐसा सबका अनुभव होने पर भी हरि की कृपा सपादन न करके सब जीव विषयों

के लिए ही तिलमिलाते रहते है। देव जिसकी रक्षा करता है, उसे अग्नि भी वाधा नही पहुचा सकती।

मै नि शब्द ब्रह्म का ही प्रतिपादन करता हू। मैने देहबुद्धि से मरकर जीवन पाया है। देह से ससार मे हू, आत्मा से नही। सब विषय-भोगो का त्याग हो गया। मै सर्वसग मे रहकर भी नि सग हू।

मिठास को जैसे सब गुड ही है, वैसे सवकुछ देव ही हो गया है। अन्दर-बाहर देव ही है, फिर किसको भजू ? पानी से तरग अलग नही है। सोने और गहने मे सिर्फ नाम का फर्क है, उसी तरह देव में और मुझमे केवल नाम का अन्तर है, वास्तव में दोनो एक है।

जीव शिव का मूल स्वरूप जो भेदशून्य परब्रह्म है, वहा जीव शिव की समरसता है। जीव और परमात्मा मूलत. एक है।

मानसिक पूजा ही भगवान को प्रिय है। कल्पना का वह भोग लेता है। भक्ति का बाहरी-ठाठ-बाट उसे पसन्द नही है। भगवान अन्त करण के भूत-वर्तमान-भविष्यत् के भावो को जानता है।

अगर तू ही विश्व मे व्याप्त है, तो मै तुझसे अलग कहा हू ? अगर अन्दर-बाहर केवल तू ही है तो अन्दर से क्या-क्या निकाल बाहर फेकू ? और बाहर से क्या-क्या अन्दर डालू ?

निर्गुण से सगुण दर्शन लेने गए तो ऐक्य-भाव मे भेद पैदा हो जाता है।

: ७ :

उपदेश

इस प्रपच-सगति मे जो तेरी आयु वृथा गई, उस हानि को तू कैसे पूरी करेगा ? जिन स्त्री-पुत्रो के मोह मे तू फंसा हुआ है, वे तुझे प्रयाण के समय छोड देगे। जो उत्तम लाभ है, उसीका विचार कर।

परस्त्री को मा के समान मानने से क्या खर्च होता है ? दूसरे की निन्दा न की और दूसरे के द्रव्य की अभिलाषा न की, तो उसमे तुम्हारा क्या खर्च होता है ? राम-राम कहने से ुमको क्या श्रम होता है ? सतो के वचनों पर विश्वास रखने से तुम्हारा क्या खर्च होता है ? सच बोलने से तुमको क्या कष्ट होता है और तुम्हारा क्या खर्च होता है ? केवल उतने से ही प्रभु की प्राप्ति होती है और कोई झझट करने की आवश्यकता नही है।

जो कर्म किये जाते है, वे फलदायक होते ही है, इसलिए फलाशा न करो।

पुत्र, पत्नी, बन्धु, आदि से सबध तोडो। यह सब जजाल लगने लगे, तो फिर उससे सबध रखकर दोष में लिप्त न होओ। आदमी के मरने पर जैसे हम उसके नाम का मटका फोडकर उससे निराश हो जाते है, उसी तरह इन सबको मरा समझकर इनके नाम के मटके एकसाथ फोड डालो। त्याग के बिना भोग कभी पूरा नही होता ।

जो नारायण के अन्तराय बनें, उन मा-बाप का त्याग कर दो। बाकी के स्त्री, पुत्र, धन किस गिनती में है ? वे हमें दुःख देनेवाले शत्रु ही है। प्रह्लाद ने अपने पिता का, विभीषण ने अपने बड़े भाई का, भरत ने अपनी

मा और राज्य का त्याग किया। हरि के चरणकमल ही सर्वधर्म है; अन्य उपाय दुःख-मूल है।

मान-अपमान की गुत्थी खोल डालो। हमेशा समाधान रहना ही देव का दर्शन है। जहा शाति की वस्ती है, वहां कालगति कुठित हो जाती है। अन्तःकरण मे जो-जो ऊर्मिया उठें, उन्हे शाति से सहन करने से परमार्थ सुलभ हो जाता है।

संपूर्ण साधनो का सार यह है कि चित्त मे हर्ष-विषाद न हो। अधिक शोध करने की जरूरत नही है। सारा प्रपच झूठा है। देह-अभिमान छोड दे।

दुर्जन की गध दूर से भी आती है। उनसे दूर रहो। उनसे कभी न मिलो न बोलो। दुर्जन के अग में अटूट गदगी भरी हुई है। उनकी वोली रजस्वला के स्राव की तरह है। दुर्जनों से पागल कुत्ते की तरह डरते रहो। दुर्जन का अंग-अग भी अच्छा नही। जिस देश मे दुर्जन हो, उस देश तक का त्याग कर देना वतलाया है। ज्यादा क्या कहे दुर्जन का शरीर नरक है।

अगर तेरा अन्तःकरण शुद्ध नही है, तो काशी और गगा तेरा क्या कर लेगी? प्रेम विना बोलना कुत्ते के भोकने के समान है।

जिसके चित्त मे जैसी वासना होती है, वैसी ही उसकी भावना होती है।

मन को प्रसन्न रखो। यही सब सिद्धियो का आदि-कारण है। मोक्ष, बंधन, सद्गति, अधोगति, सबका मूल कारण मन है। पत्थर की मूर्त्ति में देव की कल्पना मन ही करता है। मन ही इच्छाए पूर्ण करनेवाला है। मन ही सबकी मा है। किसी व्यक्ति मे गुरु की कल्पना मन ही करता है।

नाशवंत अलंकारो से किया गया पूजन क्या सच्चा पूजन है ? यहां सब-कुछ नाशवंत है, लोगो को क्षणिक का लोभ दिखाकर कैसे फसाऊ ?

शोक से शोक वढता है, इसलिए हिम्मत करके खूब धैर्य धरो। इस जन्म मे थोडा-सा भी परमार्थ साध लिया तो काफी है।

जिसका जैसा अधिकार है, वैसा उसको मार्ग दिखलाया गया है। चलने से रास्ता मालूम होता जाता है। पार उतरने के बाद नौका को मत जला देना, क्योकि वह वहुतो का पार उतरने का आधार है।

शाति के परे सुख नही है, इसलिए सवको शाति ही धारण करनी चाहिए। इसीसे तुम भवसागर पार कर सकोगे। अगर चित्त में काम-क्रोध खदवदाते रहोगे तो शरीर मे आधि-व्याधि पैदा होती रहेगी। शाति धारण की, तो त्रिविध-ताप अपने आप चले जायंगे।

देवार्चन करते समय यदि घर सतजन आयें, तो देव को एक तरफ रखकर सत की पूजा करनी चाहिए।

हे जिह्वे, सिवा भगवान के और कुछ न बोल। सव इंद्रियो से मेरी यही विनती है कि भगवान से विमुख न हो। मेरे कान सिवा उसके नाम के कुछ न सुने। मेरी आखे सिवा उसके रूप के कुछ न देखे। हे चित्त, निश्चित, एकविध, और अखड भाव से भगवान के चरणों मे रत रह। हाथ-पैरों चलो और भगवान को नमस्कार करो। भय क्या है ? हमारा पक्षपाती नारायण है।

अर्थी परमार्थ कैसे कर सकता है ? लोभ से चित्त भिखारी हो जाता है।

अपने देहरूपी घर में देव को निरन्तर वसाना चाहिए। उससे बैठते,

सोते, खाते, चलते वक्त उनका सग रहेगा। ससे सकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप भी नष्ट होंगे। सब काल भगवान के योग का सुकाल हो जायगा।

अगर पानी निर्मल नही है तो साबुन क्या करेगा ? उसी तरह अगर चित्त शुद्ध नही है तो बोध क्या करेगा ? वृक्ष पर अगर फल-फूल नही आते तो वसन्त ऋतु क्या करेगी ? बाझ के बच्चे नही होते तो पति क्या करे ? नपुसक पति से उसकी स्त्री क्या करे ? प्राण जाने पर शरीर क्या क्रिया करेगा ? पानी के बिना धान्य कैसे पकेगा ?

अभिमान का नष्ट होना ही योग और तप है। करना हो तो यही करो। इसीसे आवागमन नष्ट होगा और देह-भार दूर होगा।

अपना हित करने में देर न कर, क्योकि काल-सत्ता-अपने हाथ मे नहीं है। जो अपना हित कर लेता है, वही बुद्धिमान है।

सर्वव्यवहार की ओर एक ही समय तू एक मन को कैसे बाट सकता है ? देह को प्रारब्ध के हवाले कर चित्त मे भगवान को दढतापूर्वक रख। उसे छोडकर दूसरी बात से सकल्प की ओर मन को न लगा। तभी तेरा परमार्थ कार्य सिद्ध होगा। इसे भलीभाति जानने से सहज स्थिति की प्रतीति ोगी।

परमार्थ की राह जल्दी ले, नही तो दूर पड जायगा। कितनी ही खट-पट की, तो भी सार और ही ले जाते है। प्रपंच-भार क्यो व्यर्थ सिर पर ढोता है ? जवतक आयु शेष है, तवतक जल्दी कर। अरे ओ बवूचक ! तुझसे परमार्थ का एक भी धक्का सहन नही होता तो तू परमार्थ-सुख को कैसे प्राप्त कर लेगा ?

उस रास्ते चलना चाहिए जो कि जहा जाना है, वहा पहुचा दे। वहां पहुचने से पहले की वातें वहा पहुंचने पर व्यर्थ हो जाती । मैं जो पैरों

पडकर-,ऐलद्वा हू सो सुनो। क्या भक्ति-भाव ही वहा जाने का रास्ता नही है ? मन मे उत्कठा होनी चाहिए।

तुममें पानी हो तो शूर वनो, वरना सीधे-सादे मजदूर बनकर मजदूरी करो; परन्तु ढोग न करो।

जिसके अन्त.करण मे सतो के वचनों पर विश्वास हो, उसे उपदेश करने की जरूरत नही है।

द्रव्य का काल पीछा कर रहा है, इसीलिए उसका सग करना मिथ्या है। द्रव्य नरक का मूल है। प्रारब्ध से मिलनेवाला दु.ख-सुख नही टल सकता, इसलिए किसी फल की तृष्णा रखना व्यर्थ है। परमार्थ को सादर श्रवण करो और नित्य टिकनेवाले परमार्थ धन को लेते रहो।

अन्त.करण मे हरि का ध्यान करके सुख से तृप्त हो। मुंह से क्या वड़वड करता है ? जबतक अनुभव की मिठास नही चखी, तबतक विधि-निषेध की माथा-पच्ची करनी पडती है। मौन धारणकर अपनी बुद्धि को स्थिर करो, यही साधन की सिद्धि है।

तुम स्वयं नकटे हो। शीशे पर गुस्सा क्यों करते हो ?

मनुष्य को चाहिए कि अपने निर्वाह भर के लिए काम करे। चित्त में हमेशा संतुष्ट रहे, यही नारायण के अन्त करण में आ जाने की पहचान है। हमेशा आत्म-विवेक से काम करे। अन्तर्मुख होने से आत्मा की प्रतीति होने लगती है।

युक्त आहार-व्यवहार हो; इन्द्रिया नियमित रहें; वहुनिद्रा, वहुभाषण न हो। परमार्थ महा धन है। अपनी देह देव के समर्पण कर दे, उसका कुछ भी भार अपने पर मत रख। इससे सर्व आनन्द होगा।

पर-द्रव्य और पर-नारी ही गदी चीजे है। जो इनसे दूर है वही पवित्र है। गद्य-पद्य के ग्रन्थ लिखकर दूसरे के पैसे हरण करने की चेष्टा न करे। उससे अपनी बुद्धि निर्लिप्त रख। पाप-पुण्यातीत पूजी इकट्ठी करनी चाहिए। वन में न जाओ, विश्व और विश्वभर समान है।

ऐ मेरे दुर्गति करनेवाले मन, तुझे कितना समझाऊं? तू किसीके पीछे-पीछे न लग। अन्य के प्रति किये गए स्नेह से दुख होता है। जग के प्रति निष्ठुर होने में ही हरि का प्रेमसुख है। विचारकर देख और वज्र की तरह कठोर हो।

हाथ-पैर अग्नि की खूराक है, इसलिए हरि-भजन छोडकर इनका पालन क्यों करते हो? भक्तिभाव की जगह लज्जा या लौकिक व्यवहार का विचार न करना। जो इसपर हँसता है, उसे ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। कथा के समय जो कथा-श्रवण मे मन पिरोता है, वह देववान है बाकी के लोग पत्थर है जो मनुष्य का जन्म लेकर आ गए है।

सब जग देव ही है तो भी उसके स्वभाव की ओर न देखकर उसके पैर ही पडना चाहिए। अग्नि का सौजन्य शीत-निवारण है, उसे पल्ले मे न बांधो। सर्प, बिच्छू नारायण ही है, तो भी उन्हे दूर से ही नमस्कार करो, हाथ न लगाओ।

तू भगवान् का स्मरण करता रह। काल तेरा दास हो जायगा। माया-जाल का बन्धन टूट जायगा। समस्त ऋद्धिया-सिद्धियां तेरे कहने के अनुसार करनेवाली हो जायगी। 'सब शास्त्रो का यही सार है। यही वेदो का मुख्यार्थ है।

तू निश्चल बैठकर उसका ध्यान कर। वह तुझे अन्न-वस्त्र देगा। हमें अधिक सचय करके क्या करना है? सबकी पूर्ति करनेवाला देव हमारा ऋणी हो गया है। वह बडा दयालु व मायालु है, भक्तो की जरूरते जानने-

वाला है। शरणागतों से लाड़ लडाना भी जानता है। उससे मांगना या कहना नही पड़ता, क्योकि जिसकी जैसी इच्छा है, उसे वह जानकर पूरी करता है। तू अपनी वाणी को विट्ठल के नाम का अलंकार पहना, इससे तू स्वयं ही दुनिया मे विट्ठल हो जायगा।

हरि-भजन मेरे प्रारब्ध मे नही है, ऐसा मत कह। रे मूढ, ऐसा मत कह कि मेरी देह विषयोपभोग के लिए है। हे चाण्डाल, ऐसा न कह कि नर-देह परमार्थ करने के लिए दुर्बल है। इन मूर्खो को कहातक कहूं ? मेरी नही सुनेगे तो आखिर मुह मे धूल पडेगी।

स्वच्छंद जग की सेवा की इच्छा न रखो, क्योकि उससे देव की अवज्ञा होती है। देह का निग्रह करनेवाला देव है, देह उसके हवाले कर देनी चाहिए।

जिन वचनो से नारायण से अन्तर पडे, वे वचन गुरु के भी हो तो भी मत मानो।

भोग से ही रोग होता है। जिह्वा रस-सेवन के पीछे लग गई, तो दस्त होने लगते है।

जिह्वा से नित्य नारायण का नाम लेता जा। इससे जन्म, जरा, व्याधि, पाप-पुण्य, ये सब दुःख नष्ट हो जायंगे। जन्म, जरा, दुःख, व्याधि को और काम-क्रोध अहंकार की ऊर्मियो को तू समभाव से सहन करके अविनाशी आत्मसुख अपने अन्दर साध्य कर ले। अक्षरो को रटने से अभि-मान और विधि-निषेध पीछे लगते है, वाद करने से निंदादि दोषो का वज्रलेप लगता है। इस प्रकार ये भूषण दूषणों की जड है। इसलिए इन विषयों की छटपटी छोड़ दे और सर्वभाव से सतो की शरण जाकर हर हाल मे प्रसन्न रह।

जिस पुरुष के दो स्त्रिया हैं, उसके घर पाप बसता है। जिसको पाप की तलाश हो, वह उसके घर चला जाय। जो झूठ बोलता है, वह पाप की खान है। जो सत्य बोलता है उसके समीप सर्वसुखो का भंडार है।

देव के सिर पर अपना सब भार डालकर उसको देह समर्पित कर देनी चाहिए। 'देह मै हू' यह अभिमान मिथ्या है, ऐसा समझकर सारे ससार-भार के निमित्त स्वरूप इस अभिमान का त्याग कर दो। इस देहादिक प्रपंच का सग छोड दो तो तुम्हारे अन्दर भगवदानद प्रकट होगा।

'देह मै नही हू' यह भाव दृढ होने पर जीव परमात्मा स्वरूप हो जायगा। इसलिए सारा समय इसी चिन्तन मे लगाओ। देव से कोई स्थान खाली नही, इसलिए अपने रक्षण की चिन्ता न करो। जीव को अर्पण कर देने से हृदय मे देव प्रकट हो जायगा।

देव पर पडे हुए अपने समस्त भार को कही पर उतारो मत। भूख-प्यास के समय चिन्तन करना अच्छा। देव के चिन्तन मे लापरवाही दिखाने से श्रीपति का अन्तराय होता है। मै देव के सिवा सारा वैभव गदा मानता हू।

स्त्री के त्यागने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति नही हो जाती; देश त्यागने से वैराग्य नही आता। वासना के कारण काम और भय बढता है। इसलिए धीरज से व्यर्थ की वासनाओ का त्याग करे। झूठी प्रशंसा करने से वाणी गदी होती है।

अन्न न छोड, वनवास न कर। सब भोगो के समय नारायण का चिन्तन कर। मा के कधे पर चलनेवाले बालक को चलने का श्रम नही होता, उस बालक को मा के सिवा सब भावनाओ का मुडन करना चाहिए। न भोगो में फस, न त्याग में पड। प्रसंगोपात्त जो-जो भोगता जाय, उसे देव के अर्पण करके नष्ट करता जा। इसके अतिरिक्त अब और कुछ बार-बार मत पूछ, क्योंकि इसे छोडकर अब और कुछ उपदेश शेष नही रहा।

जबतक मुह मे राम नही है, तबतक सब झंझट व्यर्थ है। सावधान ! सावधान ! सकल्पो से मन को मुक्त करले। जो भोग तेरे भाग मे आये उन्हे भगवान के अर्पण करके केवल ईश-चिन्तन कर।

जग को सच्चा मर्म नही बतलाना। तद्विषयक भ्रम रहने देना। सच्चा मर्म नही बतलाने से वे पीछे लगेगे और व्यर्थ श्रम उठायंगे। वे सीखी हुई बात को हृदय मे धारण नही करते। अनुभव के बिना कहना वृथा श्रम होगा।

एक जाति के प्राणी का दूसरी जाति के प्राणी से भेट कराने का सकल्प हृदय मे न लाओ। जो होनेवाला हो, वह होनहार के अनुसार होता रहे, जिस प्रकार कि नारायण ने तय कर दिया है। व्याघ्र की भूख मिटाने के लिए गाय का वध करना क्या पुण्यकार्य होगा ? स्वार्थी आदमी पूरा विचार नही करता।

सयाने को उपदेश का एक वचन ही काफी है। अगर तू आखें नही खोलेगा तो अन्तकाल मे यमराज तेरी खबर लेगा।

ऐसे देव को छोड़कर तू दीनवाणीवाला कैसे हो गया ? कामनाओ से हृदय भरा रखते हो, मगर आखिर मे हाथ मे धूल भी नही रहने की। उदार, जगदानी, शरणागत का अभिमानी पाडुरंग भगवान है। वह तुलसीदल, पानी और चिन्तन का भूखा है। सबके दु ख का निवारण वह स्वयं करता है। उससे मिलने के लिए कोई प्रतिबन्ध नही है।

पहले अज्ञान के कारण जन्म-मृत्यु के बहुत-से दुःख सहन किये, अब आगे क्यों अन्धे बने ? जो कुछ सुख-दुःख हो उन्हे देव पर डालने के अलावा किसी तरह भी कोई खटपट न करो।

इस मिथ्या प्रपंच का मोह न रखकर जीव को साक्षी के रूप में रहना

चाहिए। अनेकत्व में एकत्व है और एकत्व में अनेकत्व। प्रकृति स्वभाव के अनुसार उसका अनुभव होता है।

लोगो मे अपना मान बढा देखकर निश्चिन्त न हो; भूतो की प्रीति से भूत-गति (योनि) मे जाना पडता है। इसलिए अपने मन को भगवद्भक्ति मे लगाना चाहिए, वरना मन इद्रियो की सहायता से बहिर्मुख हो जायगा। एक परमात्मा की ही ओर मन को लगाना चाहिए। मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रग की ओर उसको लगावे उस रग मे रग जाता है। देव सब कर्मों से निष्काम है और जीव अवस्था मे ही कर्म करने की आदत होती है।

निर्वैर होना साधन का मूल है, शेष सब झझट गौण है। ढोग का कोई व्यवहार अधिक नही चलता; आखिर सच-झूठ का फैसला हो जाता है। जिसको प्रभुचिन्तन का ही प्रेम है, उसे ही सच्चे लाभ मे समझना।

जो आशा को समूल खोदकर निकाल फेक सके वही बैरागी बने।

तू जो कुछ सीखा है, उसका अभिमान रखेगा, तो यमलोक के रास्ते जायगा। जिसमे नम्रता नही, वह तलवार नहीं कठोर लोहा है।

जहा हरिनाम का गजर बज रहा है वहा तू अपार लाभ मुफ्त लूट!

रास्ते मे चलते हुए कदम-कदम पर मा पाडुरग का चिन्तन करना चाहिए। इससे वह भगवान सब सुख लेकर चिन्तन करनेवाले के पीछे लग जाता है, और अपनी पसन्द का रस उसके कठ में डालता है। उस भक्त पर आसक्त होकर वह अपने पीताम्बर की छाया करता है, और उसके मुंह से क्या प्रिय उत्तर मिलते है, यह सुनने के लिए उसके मुह की ओर देखता है। नारायण के नाम स्मरण को ही जीवन बना डालना चाहिए। इससे भूख-प्यास नही सतायगी।

अपना हित चाहते हो तो दम्भ को दूर करदो। शुद्ध चित्त से ईश्वर की

सेवा करो। विट्ठल का नाम एकान्त में प्रेम से गाओ। इससे अलभ्य लाभ घर पर चला आयगा। यह आखिरी बाण है, इसे छोड़कर वाणी का व्यर्थ व्यय न करो।

घाटे का व्यवहार खोटा है। जिन्होंने आलस को जीत लिया है, उन्हें देखकर भी तू अपने आलसीपने पर लज्जित नही होता।

जन्म-मरण मे पड़कर तू नित्य नये-नये दु.खों से कष्ट पा रहा है। इसकी तुझे शर्म नही है ? काम-क्रोधादि चोर तुझे पथ-भ्रष्ट करके नष्ट करने पर तुले हुए हैं। तू यह देखते हुए भी क्यो नही देख रहा ?

शूरता का ही मोल है। थोथी बकवास से कार्य-सिद्धि नही होती। प्रतिज्ञापूर्वक किया हुआ निश्चय कभी न छोडो। धैर्य ही सफलता का कारण है। धैर्य से नारायण सहायक होता है। हरि निश्चय से अपने दासों का रक्षण करता है।

यदि तूने एकान्त मे बैठकर एकाग्रचित्त से अपना चित्त शुद्ध कर लिया, तो तुझे ऐसा सुख मिलेगा जिसका अन्त नही।

मानव खुद ही तरता है और खुद ही मरता है। अतः अपना उद्धार स्वयं करो।

अरे, तुझे एक सेर अन्न की आवश्यकता है, उसीकी इच्छा रख ! बाकी बड़बड व्यर्थ है। मोह-पाश मे बंधकर क्यों तृष्णा बढाता है ? तुझे साढ़े-तीन हाथ जगह चाहिए, अधिक पाने का श्रम व्यर्थ है। एक राम को भूला कि शेप सब श्रम ही है।

जिस तरह कोल्हू के बैल पर करुणा न लाकर तेली उसे मारता है, ...ी प्रकार भवभ्रमण के दुःख सहने ही पड़ते हैं। इसलिए जबतक तुम्हारे हाथ में है, अपना स्वहित देख लो।

मनुष्य-देह दीर्घ काल के बाद मिली है। शीघ्र लाभ ले लो, वरना वह नष्ट हो जायगी। हरिनाम तत्परता से लो और सुख के भडार भर लो। बाद मे फुरसत के समय अपना हित-साधन कर लेगे, ऐसा कहना पागलपन है। क्या जीना अपने हाथ मे है ?

हर एक की चाह पूरी करने के लिए नारायण हाथ ऊपर उठाये खडा है। वह सर्वज्ञ, उदार, माईबाप जिसको जो रुचता है, उसके सामने ला रखता है। जैसे अपने कर्म होते है वैसी ही पसन्द होती है और वैसा ही खाना और भोगना पडता है। इसलिए मूल वस्तु को ही विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। जो बोया जाता है उसीका फल काटना पड़ता है! बबूल के पेड़ पर आम कैसे आयगे ? ईश्वर से कुछ न कह, तू स्वय ही अपना शत्रु-मित्र है।

अगर तू इन्द्रियो का दमन नही कर पाया तो फिर तूने यह परमार्थ की दुकान क्यो लगा रखी है ? बाहर से धुला हुआ, अन्दर से मलिन। इस तरह अन्त मे तेरे हाथ कुछ नही लगेगा।

लोग जब निष्काम होगे तभी राम को आखो से देखकर रामरूप हो जायगे।

हे सतो, अच्छी तरह सुनो। सबका सार एक यही है कि दुर्जन का त्याग करना चाहिए। प्याज से भी ज्यादा बदबू प्याज खानेवाले के मुह से आती है। जैसा सग वैसा रग।

अन्तकाल का सबधी भगवान ही है, उसीका आश्रय ले।

शरीर को बाहर से धोने मे क्या है ? जबकि अन्त करण गंदा है, पाप-पुण्य की गदगी तेरे अन्दर भरी हुई है। फिर हमेशा पवित्र रहनेवाली भूमि की छुआछूत का तू क्यो विचार करता है।

ऐ मेरे अधीर मन, मैं तुझसे एक बात पूछता हूं। तू निरन्तर दुश्चिंत क्यो रहता है ? खाने की चिन्ता करता है। तुझसे अच्छे तो पक्षी है। चातक पक्षी पृथ्वी का जल नही पीता, इसलिए उसके लिए बादल गर्मी मे वर्षा करते है। कितने ही जीव पानी और वन मे है, उनके पास कोई संचय है क्या ?

अरे, तू कृपालु देव का चिन्तन क्यो नही करता ? वह अकेला सबका प्रतिपालन करता है। गर्भ के बच्चे की वृद्धि और मां के स्तनो में दूध की उत्पत्ति कौन करता है ? ग्रीष्म काल मे पेडो पर पत्तियां फूटती है। उन्हें पानी कौन देता है ? उसने तेरी क्या चिन्ता नही की ? तू उसीका स्मरण करता रह। जिसका नाम विश्वंभर है, उसीका ध्यान तू सतत धर।

कन्या-पुत्रादि का मोह मगलदायक नही। इससे अपने और परमात्मा के बीच एक लौकिक पर्दा पड जाता है।

दही मे छाछ और मक्खन दोनो होते है, परन्तु दोनो को एक दाम पर न मागो। आकाश के पेट में चन्द्र और तारागण होते है, परन्तु दोनो को समान न समझो। पृथ्वी के पेट मे हीरे और कंकर-पत्थर है, इन दोनों को एक-दूसरे से न बदलो। उसी प्रकार संतो और संसारियों को समान रूप से न भजो।

जिससे अपकीर्ति हो उसका पूर्णरूप से त्याग कर देना चाहिए।

त्याग करना हो तो अहंकार का त्याग कर। फिर जिस स्थिति में तू हो उसमें रह। फिर देख कि शेष क्या बचा। द्वैत को सामने न आने दो। शुद्ध मन और सन्तोष चाहिए।

उत्तम व्यापार से द्रव्य प्राप्त करो और उसे उदासीन भाव से खर्च करो। इससे उत्तम गति और उत्तम भोग मिलेंगे। परोपकार करना, पर-

निन्दा न करना, पर-स्त्री को मा-बहन समझना, भूतें [illegible] आदि पशुओ का पालन करना, प्यासो के लिए जगल में पानी का प्रबन्ध करना है, शातरूप रहना और किसीका बुरा न चाहना, बड़ो का महत्त्व बढाना—गृहस्थाश्रम के ये ही मुख्य फल है और परमपद-प्राप्ति के लिए आवश्यक वैराग्य-बल यही है।

कोई चीज खो जाय तो उसके लिए व्यर्थ जी न जलाना। यह समझ ले कि वह वस्तु आपने कृष्णार्पण कर दी।

हे देव, विषय-सेवन मे तू मुझे आलसी बना और तेरा नाम लेने की शक्ति दे। और कुछ बोलने मे मेरी वाणी को गूगी कर, परन्तु तेरा गुणानुवाद करने मे मेरी वाणी को बल दे। तेरे चरणकमलो के अतिरिक्त और कुछ देखने में मेरी आखों को अधा बना दे।

हे प्रभो, आपसे मेरी एक ही मांग है कि दुर्जन की संगति मुझे बिलकुल न होने दे। उससे घडी-घडी चित्त मे विक्षेप होता है।

जो अपने हित की बात कहता है, वह मानो जीवनदान देता है, और जो मनपसन्द आचरण करने की बात कहता है उसे घात की समझना। जिस तरह गलत रास्ते पर जानेवाले अधे को रोका जाता है, उसी प्रकार अधर्मी को जबरदस्ती करके भी रोकना चाहिए।

तू ऐसा सन्यास ले, जिससे तेरे सकल्प का नाश हो जाय ; फिर तू कही रह—बस्ती में, जगल मे, पलंग पर या जमीन पर, चाहे जहां। जैसे आकाश अणु-अणु मे समाया हुआ है, उसी प्रकार देव सर्वत्र है।

तू शास्त्रो के शब्दो का वाचन करता जाता है, बारंबार उनका पारायण करता है, परन्तु जबतक तेरा अन्त करण शुद्ध न होगा; तबतक वह सब व्यर्थ है। भावार्थ ग्रहण किये बिना ऊपरी वाचन भाररूप है। प्रभु-प्राप्ति करनी है तो उसके प्रति एकनिष्ठा-युक्त भाव रखता जा।

अपना सम्पूर्ण भार देव के सिर पर डालकर अयाचक वृत्ति स्वीकार करना ही सार है। अपनी देह को देवाधीन कर देना और उसके द्वारा योग्य समय पर योग्य कर्म कराते रहना। इस विश्व के अन्दर विश्व का पोषण करनेवाला है ही, ऐसा निश्चय मन के साथ कर लिया कि वही जिस समय जैसी चाहिए, वैसी व्यवस्था कर लेता है। तुम निश्चय समझो कि उपर्युक्त स्थिति एक प्रकार का बल ही है।

जो तुम्हे ब्रह्मज्ञान चाहिए तो सन्तों के चरणों की सेवा करो।

'यह मेरा' और 'यह तेरा', यह द्वैतभाव जाता रहे तो जीवात्मा पर जो-जो बोझा है वह सब उतर जाय। इस एक बात के अलावा आपको और कुछ भी नही करना है और कुछ त्यागना भी नही है। स्वरूपभाव स्वभावत. शुद्ध है। प्रपच के मोहजाल मे आशा-तृष्णा के कारण जीव बन्धन मे पड गया है। जीव को फसा मारनेवाला तो उसके मन का झूठा सशय ही है। स्वरूप-स्थिति मे सुख का अनुभव होता है और दु ख की छाया भी वहा नही होती। सबका कर्ता एक नारायण है। लाभ-हानि, मान-अपमान को समान जानना। इसे ही सच्चा सुखी जानना।

एक अच्युत के नाम-चिन्तन से तेरे तमाम कार्य सिद्ध हो जायंगे। एक हरि के ऊपर निष्ठा रखना, यही सौ बात-की-बात है।

केवल भाव-भक्ति से ही तुम्हारा काम होनेवाला है। दंभयुक्त आचरण से तुम्हे नक्सान ही होगा।

देव की ही स्तुति करो और जो निन्दा करने का मन हो तो भी देव की ही करो। दूसरे काम में वाणी का व्यय करना अधम कार्य है। लोग सम्यक् ज्ञान की बातें सुनते वक्त बहरे हो जाते हैं और नरक से जानेवाले कामों को पैसा खर्च करके भी करते हैं।

भवसमुद्र मे डूबे हुओ को बारहो घडी उस पार जाने का विचार करते रहना चाहिए। यह देह नाशवान् है और किसी-न-किसी दिन विलीन हो जानेवाली है। इस ऐहिक और प्रापंचिक व्यवहार के उन्माद के वशीभूत होकर अधा नही बन जाना चाहिए।

महान् पुरुषो के साथ जान-पहचान रखना अच्छा है। उसके अतिरिक्त अन्य लोगो के साथ भाई-चारा करने की झझट मे न पडना। लूटना हो तो ऐसा खजाना लूटो कि जिसका कभी अन्त ही न आवे। महान् यश प्राप्त करके जीना उत्तम जीवन है।

परमार्थ की साधना करते समय कोई दूसरे की बाट न देखे, न दूसरे के लिए खडा रहे।

जैसे मिश्री की डली पानी मे पडकर उसके साथ मिल जाती है, उसी तरह तुम भी अपना मन नारायण को अर्पण करके उसके साथ तद्रूप हो जाओ।

कंगाल लोग धनियो का नाश चाहते है ; मूर्ख पडितो की मौत चाहते है। भाई, तू दूसरो का खयाल छोड़कर देव की शरण मे जा।

हे मनुष्यो, तुम जरा भी चिन्ता नही करना और लेश-मात्र भी भय नही रखना। कारण कि नारायण अपने भक्तो का हमेशा सहायक होता है और उनका रक्षण करता है। उससे कुछ कहना हो तो शब्दो की योजना करके सुन्दर भाषण तैयार करने की भी जरूरत नही पडती। निर्भय और नि शब्द रहो।

ऐ मेरे मन, तू अन्य कोई सकल्प-विकल्प न करके केवल भगवान का ही चिन्तन करना। वहा अपार सुख-भडार है। वहां कल्पना की गति कुठित हो जाती है। वहा हृदय को विश्राति मिल जाती है और तृष्णाए शान्त हो जाती है।

दुर्जनो के साथ कभी मित्रता नही करना, उनका कभी संसर्ग भी न होने देना ; क्योकि उससे वार-वार चित्त का भंग हुआ करता है। दुर्जनो से तो दूर-दूर ही रहना और उनके साथ वोलने तक का प्रसंग न आने देना।

नारायण की एकविध और एकनिष्ठ होकर उपासना करना, क्योकि विषय-भाव से उसे कष्ट होता है। तद्विपयक भावना मे तनिक भी अन्तर न पडने देना। विक्षेप का नाश करना और नितांत एकाकी रहकर आनन्दकन्द श्रीहरि मे अनन्यभाव रखना। आलस और निद्रा का त्याग करना, धैर्य धारण करना और जाग्रतावस्था मे रहकर हरिस्वरूप का दृढ़ आलिगन करना।

अरे जल जाय यह ज्ञान और यह चतुराई! भगवान् के चरणों में मेरा भाव वना रहे, मुझे इतना ही वहुत है। ये आचार और ये विचार भी जल जाय! मेरा मन प्रभु में स्थिर हो जाय यही वहुत है। दभ, मान और लौकिक व्यवहार मे आग लगे। मेरा मन परमात्मा के ध्यान मे मग्न रहे मुझे इतना ही चाहिए। यह शरीर जल जाय और इसके सम्वन्धी भी जल जायं। मेरे कंठ में निरन्तर परमानन्द श्रीहरि का वास हो यही वहुत है। मेरे मन! जिससे सवकुछ सिद्ध हो जाता है ऐसे श्री विट्ठल के चरणो का आश्रय ले।

चित्त मे विवेक का उदय होने पर वैराग्य धारण करना चाहिए। उससे पहले वैराग्य लेने से लोगो में वड़ाई मिलती है पर उद्धतता भी आ जाती है। अन्तर के आदेशानुसार आचरण करना ही उत्तम है।

जितना वोलने से तुम्हारा हित हो उतना ही वोलो। व्यर्थ वड़वड करके मुखी जीवों को कष्ट न दो। तुम स्वय शुद्ध हो जाओ इतना ही वहुत है। मैं तुम्हारे पैरों पड़कर कहता हूं कि दूसरों को धिक्कारो मत; अपनेको शुद्ध वनाओ।

अरे मनुष्यो! तुम अपने जीवन में चाहे करोड़ों रुपयो की सम्पत्ति

प्राप्त कर लो, फिर भी मरने पर उस सम्पत्ति मे से एक लगोटी भी तुम्हारे साथ नही चलेगी। तुम इस समय पान चबाकर लाल मुह किये फिरते हो, परन्तु आखिर मे तुम्हे फीके मुह ही जाना होगा। आज तुम गद्दो-तकियो पर सोते हो, पर एक दिन तुम्हे गाय के गोबर से लिपी जमीन पर सोना होगा। अगर तुमने रामनाम को भुला दिया तो निश्चित जानना कि जन्म वृथा गवा दिया।

किसी का सकोच करना है तो अपने चित्त का करो। खूब सुख मिले, वही काम करना। भूतमात्र के प्रति समदृष्टि रखना ही देव की सच्ची पूजा है। मत्सर रखने से दु ख होता है। किसीसे रुष्ट होना हो अथवा मुह चढाना हो, तो अपनी जात पर ही, क्योकि शेष सब तो हरिरूप है। सबका प्राण हो जाना ही सतपन है।

तू देवताओ के पूजन के झझट मे न पड। जप, तप और ध्यान करने की माथापच्ची न कर। परमात्मा के रास्ते मुड। उसकी भक्ति के आनन्द का अनुभव करने लग। वहा जो सहज गुह्य तत्व है, वे तेरा निजस्वरूप ही है। इसे तू स्वानुभव से देख ले। अब तू सावधान होकर इस एक ही जन्म मे ससार-बधनो को तोडकर मुक्त हो जा।

तू हर समय खाने-पीने की ही चिन्ता करता रहता है। अपने कल्याण का तू तनिक भी विचार नही करता। श्रद्धा रख, ईश्वर तेरी कभी उपेक्षा नही करने वाला है।

मुह से 'राम', 'हरि' नामोच्चार का साधन बडा सरल है। इससे अलभ्य लाभ तुम्हारा घर पूछता-पूछता चला आयगा। इसके सिवा कोई कैसी भी भजन साधन करने की चेष्टा करना ही नही। तप, तीर्थाटन, महादान—कुछ भी करने की जरूरत नही है। सिर्फ मन को एकाग्र करके नामचिन्तन करने

से तुम्हें हरिप्राप्ति हो जायगी। केवल नाम की सहायता से ही तुम्हे नारायण की प्राप्ति हो जायगी।

जिसकी संगत करने से मन को सुख होता हो उसीकी संगति करनी चाहिए। जिसके संसर्ग से चित्त को क्षोभ होता रहता हो उनसे दूर रहना चाहिए। जिनका स्वभाव अपनेसे प्रतिकूल हो उनके साथ सम्बन्ध नही रखना चाहिए, चाहे वे कोई हो।

जिस द्रव्य के अन्दर पन्द्रह प्रकार का अनर्थ भरा है, उसे तू दूर फेंक दे। जिसमे तेरा कल्याण है, जिससे तेरा सच्चा स्वार्थ सिद्ध हो, उसे तू सिद्ध कर ले।

जबतक मन मे से काम का नाश न हो गया हो तबतक स्त्री-बच्चो का त्याग करना योग्य नही है।

अनेक प्रकार की वासनाओ से प्रेरित होकर सकल्प करना और उनके पीछे पड़ना, इसकी अपेक्षा तू संकल्पो और उनके परिणामों को ही छोड दे। इस प्रकार दु ख का सरलता से अन्त आ जायगा। स्वप्न के जख्मों पर तू व्यर्थ रोता है। जितनी जल्दी हो सके तू मूलदेव की शरण जा। वहा तुझे सब फलो की प्राप्ति हो जायगी।

सारे कुटुम्ब का त्याग करने पर भी अगर तत्सम्बन्धी वासना रह गई तो पुन. कुटुम्ब की प्राप्ति हुए बिना न रहेगी। तो फिर त्यागी होने का ढोंग करने का क्या प्रयोजन है?

जो जिसका ध्यान करता है उसके साथ तद्रूप हो जाता है। इसलिए तुम जिस प्रपंच का फैलाव किये बैठे हो उसका क्षय कर डालो, और खूब दृढ़ मनमे

विश्वव्यापी भगवान का स्मरण करने लगो। वह आकाश से भी बडा है और अणु-रेणु मे भी समा सकता है।

अरे! तू अपने मन को सकुचित करके छोटा क्यों बन जाया करता है? देव को अपने हृदय मे समा ले और ब्रह्माण्ड को एक ही ग्रास मे निगल जा। 'मै देह हू' इस भावना से तू छोटे से घर मे घिर गया है।

ग्रन्थो का अध्ययन और पारायण ही करता बैठा न रह। जितनी जल्दी हो सके एक व्रत का आरम्भ कर——देव की ही इच्छा की शरण होकर और देहाभिमान छोडकर देव का ही भजन करने लग। भगवान ऐसे है कि नाम स्मरण करनेवाले को तुरन्त ससार-सरिता के पार उतार देते है।

मिलन का सुख लेना हो तो पहले सर हथेली पर लेना होगा। अपने हाथों अपने संसार में आग लगानी होगी और मुडकर देखना न होगा। जिस तरह पतगा जान जोखिम मे डालकर दीपशिखा पर टूट पडता है, उसी तरह तुम्हें भी निर्भय हो जाना चाहिए।

मन मे एक भाव और जबान पर दूसरा भाव यह तू करता तो है, परन्तु अन्तर्यामी परमात्मा तेरे दोनो भावो को जानता है।

इस भयकर और प्राणघातक धन-सम्पत्ति मे लुभाकर तू क्यो भुलावे मे पडा है? तू रामनाम गा; कोई गाता हो तो सुन। राजा आदि दूसरे लोगो को तू अपना मानता है। परन्तु जब काल आयगा तब कोई काम नही आयगा।

मेरे राम के सिवा साररूप सुख और किसमे है, यह तू मुझे वताए तो मै तेरा दास हो जाऊ। कीर्ति और नाम के लिए चाहे जितनी दोड-धूप करो, परन्तु एक दिन उसका नाश हुए विना नही रहनेवाला है।

ससार का त्याग करने से पहले मन को शुद्ध कर लेना चाहिए। काम-

क्रोधादिक वृत्तियों को आश्रय देने का नाम ही ससार है। जिसने अपने देह-सम्वन्धी लोभ को छोड दिया, वही सच्चा सन्यासी है।

यदि तेरा अन्त करण भगवा रग से रग नही गया तो वाहर से भगवा वस्त्र पहनकर तू क्या करनेवाला है? अपने वहिरग को तू मरते दमतक धोया करे तो भी उससे तेरे अन्त करण का मैल दूर नही होनेवाला।

जिसके ससर्ग में आने से प्रेम-सुख दूना हो जाय उसकी संगति करनी; और जिसकी सगति से अपने मूल प्रेम मे भी कमी हो जाय, उसे कलमुहा दुर्जन समझना। अगर मिलना ही हो तो मन-को-मन के साथ मिला देना ही उत्तम है।

सारा जगत् देवरूप है, यही एक मुख्य उपदेश मुझे करना है। पहले तो तुममे जो 'मैं-पना' है उसका त्याग कर दो। इतना करोगे तो कसौटी पर खरे उतर जाओगे। इस एक ही वचन मे ब्रह्मज्ञान का भण्डार है, यह निश्चयपूर्वक मान लो।

प्रापञ्चिक काम करते समय उनमें आसक्त मत हो। ममत्व-रहित एव निर्लिप्त रहना चाहिए। सव प्रकार की लज्जा छोड देनी चाहिए। नाना प्रकार की उपाधियो के वन्धन को तोड डालो और एकत्व मे रहने-वाले एक अद्वितीय परमात्मा का साक्षात्कार करो। समस्त प्रकार के देहा-दिक प्रपचों की माया से अलग हो जाने पर सांसारिक कामों मे भी वास्तविक सुख मिलता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए पहले सद्विचार करके देहादि का सम्वन्ध तोड डालना चाहिए। तुममें और मुझमें दोनो में एक सामान्य आत्म-स्वरूप भाव है। उस स्थिति मे अवस्थान करके तुम भेदशून्य और सर्वोच्च स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लो।

पचभूतों और सप्त धातुओ से वनी हुई देह को जीतकर जो तू अपने अधीन नही करेगा तो इस खेल में कैसे टिकेगा?

भगवान का एक क्षण के लिए भी विस्मरण न होने दो। सबके जीवन को सरल बना देनेवाला यही एक उपाय है। गुरु करने की और उससे कान फुकवाने की कोई दरकार नही है।

जो तू ऐक्यभाव से क्रीडा करने लगेगा तो तू इस ससार के शिकजे मे नही पडेगा। द्वैत भावना रखी तो फसा ही समझना। तू ससाररूपी खेल खेलते समय अपनी आत्म-स्थिति मे स्थिर रहकर ससार के खेल से अलिप्त रहना और विषयो का सम्बन्ध काट डालना। इस प्रकार ससार-क्रीडा करता हुआ तू एक दिन देव वन जायगा।

एक भगवान के सिवा तुम्हें कुछ जानना ही नही है। स विपय मे जरा भी सशय रखोगे तो तुम्हें निरर्थक श्रम करना पडेगा। जिससे प्रेम उत्पन्न हो, ऐसे साधन का अभ्यास हमेशा करते रहो।

जो नारायण का स्मरण करावे, उसे ही सच्चा दाता समझो।

देव के ऊपर खूब बलपूर्वक विश्वास रखना, यही गुप्त रहस्य है। ज्ञानीपने का जितना ढोग करोगे, व्यर्थ जायगा। सगमात्र का परित्याग करके एक देव के ऊपर के भाव को दृढ करो।

नारायण सम्पूर्ण जगत् मे व्याप्त है। इसीलिए उसे जनार्दन कहते हैं। तुम उस नारायण का स्मरण करोगे तो सब देव-देविया तुम्हारे पैरो पडती चली आवेगी।

जैसे हो पर-द्रव्य और पर-स्त्री की इच्छाए तो मन से निकाल ही दो। फिर भले ही इस प्रपच मे सुखपूर्वक रहो। अपने व्यवहार मे दभ को स्थान न दो। अत्यन्त शात रहो और रामनाम-रस का सेवन करो। स विपय म आलस न करो। सारे जगत् के मित्र वनकर रहो। वाणी से अशुभ वचन न वोलो। दुर्जनों के सहवास में न रहो। परमार्थ की साधना के लिए जैसा प्रयत्न सतो ने किया वैसा तुम भी करो।

एक देव के सिवा दूसरी हर वस्तु और हर व्यक्ति की आशा व्यर्थ है। तृष्णा को अत्यन्त बढ़ा डालने से कभी सुख का स्वाद नही मिलनेवाला। खूब धैर्यपूर्वक भगवान के ऊपर विश्वास रखो और सबका कर्ता-हर्त्ता एक देव ही है, ऐसा भाव मन मे दृढ़ रखो। देव तुम्हारा योग-क्षेम निभाता रहेगा, उसमे जरा भी त्रुटि न आने देगा।

हरि का नाम ओठो पर रखने के समान ही मन मे भी रखते रहो। इससे समस्त जगत् तुम्हारे लिए मधुमय बन जायगा, तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाए खेलते-खेलते पूर्ण हो जायंगी। सच्चे अन्त.करण से किया हुआ काम दीप्त हो उठता है।

: ८ :

अज्ञानी जीव और दुर्जन

जो कुछ काम होते हैं वे सब भगवान की ही सत्ता और प्रेरणा से होते हैं। मगर अविवेकी जीव को इस मर्म की प्रतीति नही होती। वह 'मैंने किया' की ैत भावना रखता है। इसीसे उसके पीछे 'भूत' लगे हुए हैं। यानी पंच-महाभूतात्मक देह उसको खोजती हुई आती है। यद्यपि काल ने इस मूर्ख का गला दबा रखा है, फिर भी लगातार 'मैं-मैं' चिल्लाता रहता है।

वृत्ति, भूमि, द्रव्य, राज्य चाहनेवालो को प्रभु की प्राप्ति हरगिज नही होनेवाली है। भाडे के लोभ से बोझा ढोनेवाले कुली को बोझे के अन्दर की सार वस्तु का लाभ नही होता। किसी एक विषय का लोभ चित्त मे रखकर देवपूजा पर मन लगानेवाला आदमी पत्थर है और पत्थर की ही पूजा कर रहा है। अनेक प्रकार के कर्म करके बडे चाव से उसकी फलेच्छा करनेवालो का तमाम कौशल वेश्या के आचार की तरह है।

ससार के पाले पडे हुए जीवो को विश्राति नही। उनमे निरन्तर अर्जन व विषय-सेवन का गर्जन होता रहता है। कुटुम्बियो का समाधान करने के लिए उनको रात-दिन काफी नही होते। इसलिए उनको देव-दर्शन दुर्लभ हो गया है। ऐसे लोग आत्म-हत्यारे हैं।

जिस गाव के लोग सेवा-भक्तिहीन है वह स्मशान है और वे लोग प्रेत हैं। वे कुत्तो की तरह पेट भरते हैं। उन्होने अपने घरो मे यमदूतो को वसा रखा है।

भक्ति-भाव से जिनके नेत्र नही छलकते और अन्तर नही उमडता, उनके सारे बोल थोथे है और लोगो का खोखला रजन करने के लिए हैं।

काम-क्रोध दुष्ट विकारों को जैसे-के-तैसे रहने देकर तिल-चावलो की तू क्यो आहुतिया देता है ? भगवान को भजने के बजाय यह कष्ट क्यो वृथा उठाता है ? जिसने अक्षरज्ञान प्राप्त किया, मात्र-दभ के लिए तप और तीर्थाटन करके अभिमान बढाया, दान देकर मात्र अहंता का रक्षण किया, ऐसा व्यक्ति आत्म-प्राप्ति के मार्ग से भटक गया, और उसने जो कुछ किया अधर्म ही किया ।

जिसके कण्ठ मे कृष्ण नाम की मणि नही, उसकी वाणी अशुभ है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री । जिसके हाथ मे दानवीरता का कंकण नही है, सत उसकी फजीहत करते हैं ।

धर्म-ठग लोग माया को ब्रह्म कहते है । वे अपनी तरह लोगो को भी भ्राति मे डालते है । देह का पालन करनेवालो को नारायण नही मिलते ।

मूर्खों को यह नही सूझता कि किस समय क्या करना और क्या न करना । वे दूध और छाछ की एक ही कीमत करते हैं ।

सोने के थाल को दूध से भरकर कुत्ते के सामने रखने से, मोतियों का हार गधे के गले मे डालने से, सूअर की नाक मे कस्तूरी लगाने से और बहरे को ज्ञान सुनाने से क्या लाभ ? सच्चा मर्म कोई विरला ही जानता है; भक्ति की महिमा साधु ही जानते हैं ।

जन्मान्ध को सारी दुनिया अन्धी लगती है, क्योकि उसकी स्वय की आंखों में दृष्टि नही होती । रोगी को मिष्टान्न विषतुल्य लगता है, क्योंकि उसके मुह मे स्वाद नही होता । जो स्वय शुद्ध नही है, उसको त्रिभुवन अशुद्ध लगता है ।

जो स्त्री के अधीन है, उसके जीने को धिक्कार है । उसका इहलोक या परलोक मे कही मान नही है । जिसका मन लोभी है,जिसके यहा अतिथि-अभ्यागत पूजे नही जाते, उसके जीने को धिक्कार है । जिसमें आलस और

निद्रा अधिक है, जो अमित-आहारी अघोरी है, उसके जीने को धिक्कार है। जिसमे विवेक वैराग्य नही है, मगर जो साधु कहलाने के लिए तिलमिलाता रहता है, उसके जीने को धिक्कार है। निन्दक और विवादी वृथा जन्म लेकर आये; वे नरक जाते है।

जो मुह से ब्रह्मज्ञान बोलता है और मन मे धन और मान की इच्छा रखता है, ऐसे की सेवा करने से जीव को क्या सुख होगा ?

सूअर मजे से विष्टा खाता है। उसे मिष्टान्न की लज्जत का क्या पता ? उसी तरह अभक्तो को पाखड प्रिय लगता है। उन्हे परमार्थ मधुर नही लगता। कुत्ते को पचामृत खिलाओ तो भी उसका चित्त हड्डी पर रहता है। साप को दूध पिला ँ, तो भी उसके मुह से वह विष होकर ही निकलता है।

गधे को महातीर्थ मे धोया तो भी वह श्यामकर्ण घोडा नही हो जाता। उसी तरह दुर्जन को उपदेश देना फिजूल है; क्योकि उसका मन शुद्ध नही है। साप को शकर डालकर पीयूष पिलाया, तो भी उसका आन्तरिक विष नही जाता।

जिसका शरीर नवज्वर से तप्त है, उसे दूध विष जैसा लगता है। उसी तरह जिसने परमार्थ का त्याग कर रखा है, उसे सचमुच सन्निपात हो गया है। जिसको पीलिया हो गया है उसे चन्द्रमा पीला दिखाई देता है। जिसे शराव ीने का शौक है, उसे मक्खन का स्वाद नही भाता।

हे प्रभो, परमार्थ रस इन दुर्जनो की सगति से नष्ट हो जाता है। जो भ्रष्ट जीव है वे मुह से नरकतुल्य गन्दे शब्द निकालते है। अच्छे मीठे अन्न को कुत्ते मुह डालकर भ्रष्ट कर देते है। जो सतो की मर्यादा नही रखते, वे निंद्य है।

जो दुराग्रही है, उनका झुकाव अमगल की ओर है। चित्त के सकोच से

कुछ काम नही होता। चित्त की अप्रसन्नता से कुछ करना पागलपन है। योग्य काल के विना कोई वात मान्य नही होती, ऐसा कर्त्ता ने नियम कर रखा है।

मै आशा के भवर मे पडा हुआ था। मिथ्या-अभिमान लेकर मै सव ोषों का पात्र वना था। इतने मे मेरी आख खुल गई,नही तो मै वडा दु.खी होता। इस मिथ्या देहाभिमान की चेप्टा से ही सव जग आक्रोश करता है। मरने की सुध नही। लोभ की ओर वुद्धि प्रवृत्त रहती है। उससे वह पीछे हट नही पाती। धन जोडकर मर जाते है। लडके उस धन के लिए लड़ते है। वे जीते-जी नारायण को याद नही करते।

ऐसे प्रेमरग मे आग लगे, जिसमें पतंगा दीपशिखा पर पागल होकर अपने प्राण गंवाता है। सास के लिए वहू रोती है, मगर अन्तर का भाव भिन्न होता है। कपटी मुँह से अच्छा वोलता है मगर अन्तर का भाव और ही होता है। वृन्दावन फल वाहर से अत्यन्त कातिवान् मगर अन्दर से कड ुवा होता है, इसलिए हाथ न लगाओ। वगुला ध्यान का ेग करके मछलियां मारता है। वांसुरी के वजने पर जैसे साप डोलता है, उसी तरह ढ़ोगी लोग हरिकथा मे ऊपरी तौर पर तल्लीन हो जाते है।

सत्य की प्रतीति हो जाने पर भी लोग अपना हित न साधकर भ्रम के चक्कर मे क्यों पडते है ? सत्य को जानने पर भी स्वयं अपना अहित करते है। हे प्रभो, यह हालत देखो। मछली मास की आशा से अपना गला फसाती है। उसी तरह आदमी धन की इच्छा से फंस जाता है। कर्म वडा वलवान है; उसके द्वारा वुरा होनेवाला हो तो होता ही है।

नाटक-तमाशों मे स्त्रियों का वेप धारण करनेवाले नटो को न देखो। जो पैसे देकर देखते है, वे दोष खरीदते है। नाटकी लोग कृष्ण व गोपी के वेप वनाकर चीरहरण का खेल करते है, इसमे मातृ-गमन सरीखा पाप है। देखो, इन सेवा-भक्तिहीन लोगों को विपय-रस का कैसा चस्का लगा है !

कितने ही शब्द ज्ञानी मनपसन्द भोजन करते हैं और बताते हैं कि 'नारायण ने ही यह भोग किया'; 'सब देव ही है, उससे अलग क्या है'— आदि। मगर सपत्ति के लिए औरो का सिर फोडने पर उतारू हो जाते है। त्यागियो के-से वस्त्र, कमण्डल और थेगडियों की गुदडी रखते हुए उनके ब्रह्मज्ञान को लज्जा लगती है। 'सब नश्वर है'—ऐसा मुह से बोलते है, मगर शाल-दुशाले, चादी-सोना, भोग-उपभोग सामग्री प्राप्त करने की इच्छाएं रखते हैं। ऐसे ज्ञानियो की, करोडो जन्म लेन पर भी, देव से भेट नही होने-वाली।

अरे हीन, तू अपनेको हरि का दास कहलवाता है और दीनो को 'महा-राज' कहता है। तुझे शर्म नही आती? विषयी-जनो की सभा मे जाकर कूल्हे मटकाता है! इसके बिना क्या तेरा पेट नही भरता? पेट ने आदमी की ऐसी विडम्बना की है कि वह दीन बनकर लोगो की खुशामद करता है।

घर-घर सब ब्रह्मज्ञानी हो गए हैं। मगर उनका ब्रह्मज्ञान आशा ृष्णा, माया से मिश्रित होने से दाभिक हो गया है। काम-क्रोध-लोभ के विष से मिले होने से वह वहुत क्लेश देता है; निन्दा-अहकार-द्वेष से वह बहुत मैला हो गया है। ऐसे ज्ञान से कुछ भी हाथ न लगकर मूल्यवान आयु व्यर्थ जाती है।

जैसे कोई पारस देकर काच ले, उसी तरह लोग अल्प लोभ से परमार्थ की बिक्री करते हैं। इन लोभियो ने स्वर्गलोक में जाकर वहा दिव्य भोग भोगकर अपने पुण्य नष्ट कर डाले।

वडे-वडे कवीश्वरो से हम दूर ही रहते है, क्योकि वे प्रासादिक कविताओ में से अश लेकर अपनी कविता मे घुसाकर स्वयं कवि होने का दावा करते हैं। उन्हें कीर्ति की चाह होती है, ऐसे अन्धो के मुँह आखिर मे काले होगे।

जो भूत, भविष्य, वर्तमान के शकुन वताते है, उन लोगों से मुझको तकलीफ होती है, मुझे उन्हे आखो से देखना भी अच्छा नही लगता। कुछ लोग ऋद्धि-सिद्धि के साधक होते है, कुछ वाचा-सिद्धि कर लेते है, मगर ये लोग पुण्य-क्षय हो जाने पर अधोगति को जाते है।

जिसको 'पडित' कहे जाने पर खुशी हो, उसे निपट मूर्ख समझो। सर्व जो समब्रह्म नही देखता, वह वेद के अर्थ के अनुसार नही चलता, इसलिए दुराचारी है। वेदो के अध्ययन से जीव और शिव को एकरूप देखना आना चाहिए।

जो मदोन्मत्त है, उसे योग्य कर्त्तव्य नही सूझता। जो नही लेना चाहिए, उसे वह ग्रहण करता है और जो अगीकार करना चाहिए, उसका परित्याग करता है। अन्धकार मे पड़ा हुआ दीवार की जगह दरवाजे की कल्पना करके अपना सिर टकराता है।

गागरभर दूध मे अगर शराव की एक बूद पड गई, तो फिर वह शुद्ध नही रहता। उसी प्रकार जिसका मन अहकार से गदा है, उस खल की वाणी श्रवण न करो। सुन्दरता के वत्तीस लक्षण है, परन्तु यदि नाक नही है तो सव व्यर्थ है। मक्खी जैसे अपने ससर्ग से अन्न को कभी नही पचने देती, उसी प्रकार खल की वाणी हितकर नही होती।

जैसे धीवर मछलियो को, शिकारी हिरनो को विना अपराध मारते है, उसी प्रकार दुष्ट लोग संतो को विना कारण सताते है। उन्हे चाण्डाल समझो। विप से अमृत की, अहकार से प्रकाश की, पत्थर से हीरे की, दुष्टों से सतों की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

निंदक दुर्जन खूब हों, कारण कि उनका हमपर बडा उपकार है। वे साबुन या मजदूरी लिये बगैर हमारे सव पापो का क्षालन करते है। ये हमारे मुफ्त के मजदूर है। वे हमारा बोझा ढोते है। वे हमें पार उतारकर आप

नरक मे चले जाते है।

जो सिद्धो ने सेवन किया, वही अधम भी सेवन करता है, परन्तु फल अधिकार के अनुसार मिलता है। स्वाति नक्षत्र का जल सीप मे मोती बन जाता है, कपास पर पडने से कपास का नाश हो जाता है,सर्प के मुह में पड से विष हो जाता है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।

चन्दन के वृक्ष के पास सर्प रहते है, पर सु ंध का लाभ अन्य दूरस्थ लोग लेते है। बोझा कोई ढोता है, लाभ कोई और ही लेता है । गाय के थन का कीडा (चिचडी) अशुद्ध रक्त का पान करता रहता है, दूध अन्य लोग ही पीते है। हे भगवान, सर्प और चिचडी जैसे जडबुद्धियो से पत्थर होना अच्छा।

कामातुर को भय, लज्जा और विचार नही होता। काम साधन के सामने वह शरीर को असार तृण-तुल्य गिनता है। कृपण का लोभ केवल द्रव्य की ओर होता है, और किसीकी उसे परवाह नही होती। बुभुक्षित अच्छा-बुरा देखे बिना जो पाता है, वही खाता है।

शराब पीकर उन्मत्त होनेवाला नगा नाचता है और अनुचित बाते वकता है। उसके दुस्तर कर्म उसे धृष्ट बना देते है; अब समझाएं किसको ? शरीर की स्थिति बडी बलवान होती है, पागल को धर्मनीति सुनाने से क्या फायदा ? यमदूतो के डडे पडने पर होश मे आ जायगा।

जिस प्रकार कौआ गगा मे स्नान करके जानवरो के जख्मों मे चोच मारता है, उसी प्रकार दुर्जन को यदि उपदेश दिया तो भी वह अपना स्वभाव नही छोडता।

विष्टा-भक्षी को अमृत अच्छा नही लगता। दुर्जन का सखा दुर्जन। सत लोग दुर्जन का सग भूलकर भी न करे। उसका दर्शन भी दु खदाई है।

जिसके घर दुनिया की 'छी-छी', 'थू-थू' की ही दौलत है, उससे अपना क्या काम निकलनेवाला है ?

दृष्टि पर आवरण पड़े होने के कारण जीवो को अपना धर्म नही सूझ रहा है। विषय-कामना से सब लोग भ्रात हो गए है, अत सच्चा मर्म वे कैसे समझे ? देखो तो, माया उन्हे कैसे नचा रही है ?

पागल के कितने ही सुखोपचार करो, उसे उनसे क्या आनन्द आयेगा ? अन्धे के आगे दीपक-नृत्य का क्या उपयोग ? भक्ति-भाव के विना भक्ति वैसी ही है।

करनी के विना कथनी-पठनी व्यर्थ है। वाणी से अमृत की मिठास का वर्णन करता है और स्वत. भूखा तडपता है।

जिसका जीना स्त्री के अधीन है, उसे देखकर मुझे बडी पीडा होती है। उस जन्तु को मै किसकी उपमा दू ? उसकी हालत मदारी के वन्दर की-सी है। उसकी सारी जिन्दगी गधे या कुत्ते के जीवन की तरह समझनी चाहिए।

मक्खी जिस प्रकार सुगन्धित पदार्थों को छोडकर दुर्गंधित पदार्थों पर खुशी से बैठती है, उसी प्रकार अभागो को अधम कामो मे ही रस मिलता है।

एक स्त्री ने अपने पेट पर साडी का डूचा बाधा, और सबसे कहने लगी, 'मुझे दिन रहे है।' गर्भधारण करने का सब ढोग वह करने लगी। उसके पेट में बच्चा नही और स्तन मे दूध की बूद नहीं। वह स्त्री आखिरकार बिल्कुल बाझ साबित हुई और लोगों मे उसकी बहुत हँसी हुई। अनुभव बिना केवल शाब्दिक ज्ञान की चर्चा करनेवाले पडितजन भी उस स्त्री सरीखे ही है।

कड़ुवी तुलसी के पत्तो को चाहे जितने गुड से चुपटें, तो भी कड़ुवे-के-कड़ुवे ही रहेंगे। नीच जातिवाला हमेशा नीच ही रहता है। उसे उपदेश देना

व्यर्थ श्रम है। विच्छू पर खूब प्रेम से हाथ फेरिये तो भी प्रेम की कद्र न करके वह डक ही मारेगा। पत्थर को चाहे जितना उवालो, नरम न होगा। सूअर को विष्टा खाना अत्यत प्रिय है। दुर्जनो का भी सूअर सरीखा स्वभाव होता है।

कुत्तो के भोकने से हाथी को सताप नही होता, भोंकनेवाले कुत्तो को ही कष्ट होता है। जो दुष्ट लोग सत-साधुओ को सताते है, वे अपना मुह अपने हाथ से काला करते है।

जिनमें देहाभिमान होता है उनका जव लोग सन्मान करते है, तव उन्हे सुख होता है। उनकी पुण्य सामग्री को मान, दभ, आदि चोर चुरा ले जाते है।

नीम को शक्कर से सीचे तो भी उसका फल मीठा नही होनेवाला। उसी प्रकार दुर्जनो को कितना ही सदुपदेश दीजिये, सव निष्फल है।

मूर्ख तो केवल भार ढोनेवाले वैल है, चतुर लोग ही अन्दर की सार-वस्तु का उपभोग कर सकते है।

तेरे शरीर के माता-पिताओ को इस बात का ज्ञान नही है कि तेरा सच्चा हित किसमें है? इसलिए वे तुझे प्रापचिक व्यवहार की शिक्षा देते है।

ज्ञान वोझ से जिनका कलेजा दव गया है, वे केवल शव्दो की ही माथा-पच्ची किया करते है और उनके स काम का अन्त ही नही आता। अनुभव-रहित शव्द रसहीन होते है।

पहले वीज वोना, फिर सीचना, फिर ईश्वर पर भरोसा रखकर जो फल मिले, उसे लेना। ऐसा न करके जो कोई फल की आशा रखकर ईश्वर की मिन्नते करते रहते है, वे आखिरकार गे जायगे और कुछ न पायंगे।

जो मनुष्य हाथ मे माला लेकर, गोमुखी में हाथ डालकर, जप करने के

बहाने केवल डाढी ही हिलाता रहता है और मन मे दूसरे लोगो की निन्दा का विचार करता रहता है, वह केवल माला के मनके टपकाता और गोमुखी को हिलाता ही रहता है। उसे यम की सजा भोगनी ही पड़ेगी।

यह शरीर-स्थल वडा वाधा-पूर्ण है, फिर भी यहा जो फसल चाहे पैदा कर सकते है। ऐसा होते हुए भी जो कोई संकोच-वृत्ति रखकर पडे रहें तो समझना कि वे अपनी जीव दशा से चिपटे रहना चाहते है।

अपने पास ही स्वरूप सुख होते हुए भी क्षुद्र लोग अज्ञान के कारण भ्राति मे पडे रहकर दुःख भोगते है। दिशा-भ्रमित गलत रास्ते चल पडता है। मेरा यह कथन निर्णयात्मक और स्वानुभव गम्य है।

देहाभिमानवालो मे धैर्य, शाति और निर्मलता नही होती। ऐसे जीव निर्बल ही होते हैं। वे लोग त्रिविध ताप से तपते रहते है।

'मै हरि का दास हूँ' यह कहने के लिए जीभ नही हिलती और व्यर्थ वकवास की दुर्गंध फैलाया करती है।

अपनी प्रशसा अपने मुह से करना शोभा नही देता। फिर भी बहुतेरे अपना वडप्पन लोगो को दिखाते फिरते है।

प्राणियो के प्रति द्वेष-बुद्धि रखना, मन मे निष्ठुर भाव रखना, और अधिक वाद-विवाद करना—ये तीन अपलक्षण जिसमे हो उसे अभक्त जानना।

पैसे के लिए जो हरिकथा करता है, उससे मै पूछता हूँ कि ऐ पापी, पेट भरने के लिए तुझे हरिकथा करने के सिवाय और कोई धधा ही न मिला ?

अपनी देह का पालन-पोषण करता जाय और मुंह मे ज्ञान की बातें

छाटता जाय, ऐसे की सूरत भूल से भी दिखाई न पडे तो अच्छा । जिसके स्वभाव मे सत के लक्षण प्रकट न हुए हो, ऐसे लोग क्या औरों को उपदेश देने योग्य कहे जा सकते है ?

जो अपनी इद्रियो का नियमन न करे और मुह से नामोच्चार करें, इससे उनका क्या लाभ होगा ? कीर्त्तन करते समय जैसा मुह से बोले, वैसा आचरण भी करना चाहिए ।

जैसा अपना जीव है, वैसा दूसरे प्राणियो का भी जीव है । पापी लोग यह बात नही जानते और दूसरो के गलो पर छुरी चलाते है । सब प्राणियो के हृदय मे जीवरूप से नारायण रहते है । पशुओ के हृदयो मे भी नारायण का वास है । हत्या करनेवाले अधोगति मे ही जायगे और दारुण दुख भोगेगे ।

कोई अपना कुरता फाडकर उसका कबल बनाये, वह जैसा हास्यास्पद है, वैसा ही दूसरे की कविताओ मे से कर्त्ता का नाम निकालकर उसकी जगह अपना नाम घुसेड देनेवाला है ।

दडित लोग अपनी विद्या को विकाऊ माल गिनकर उसके द्वारा लोगो का केवल मनोरजन करने की चेप्टा करेगे तो उनको परमार्थ-सबधी कुछ भी फल नही मिलेगा; परन्तु जो अपने मन से सब प्रकार का अभिमान दूर कर देते है और अपनी त्रुटियो की ओर ध्यान देकर नम्र बने रहते है, वे ही परमार्थ-फल का स्वाद चखते है ।

जो चित्त के साथ चित्त मिल गया तो सबकुछ मिल गया समझना । ऐसा न हो तो किसीकी भी सगत करना व्यर्थ है । पानी और पत्थर का योग हो तो भी पत्थर का अतरग पानी से न भीगता है न नरम होता है ।

बीवी-बच्चो को छोडकर मूड मुडाकर सन्यासी तो हुआ, परन्तु याद

अन्त.करण से तृष्णा का क्षय न हुआ, तो सन्यासी हो जाने से क्या सधेगा ? जो तृष्णा-रहित हो गया है, वह ससार मे रहते ए भी अलिप्त रह सकता ह।

जो प्रपच का भार ढोता फिरता है, वह देव को पहचान ही नही सकता। जिसकी बुद्धि स्थिर न हुई वह चिन्ता मे डूब-मरता है। जो तृष्णा का दास और लोभी होता है नारायण उसकी बुद्धि को स्थिर नही होने देता।

श्रद्धा विना देव का मर्म समझ मे ही नही आता। भक्ति-रहित और धैर्य-रहित लोग जैसे-के-तैसे ही रहते है।

: ६ :

भगवान से प्रार्थना

जो संतो के दास हो, उनके दासों का मुझे दास बना दो। हे हरि, फिर चाहे कल्प-पर्यंत मुझे गर्भवास करना पडे, नीच कर्म करने का भी प्रसग आया तो मै करूंगा, मगर मुख में तुम्हारा नाम रहे। तुम्हारी सेवा मे ही मेरे सकल्प समा जाये।

जिसका चित्त सदा दहकता रहता है और जिसका जी हमेशा क्षुब्ध रहता है, उसके मुझे दर्शन न हो। वह जीता भी मृतक के समान है। दुर्वचनो की गदगी से उसकी वाणी अमगल हो गई है। परतत्त्व और परोपकार को वह नही जानता।

हे देव, मै ससार-ताप से तप गया हूं। कुटुम्व की सेवा कर-करके भी तप गया हू। मैंने वहुत-से जन्मो का वोझा ढोया है। सबसे छूटने का मुझे मर्म नही सूझता। मै अन्दर और वाहर के चोरो से घिर गया हूं।

वुरे समय के चक्कर मे फंसकर वलवान भी वंदी हो जाता है, कभी दाता को भी याचको की शरण जाकर दान मागना पडता है। हे भगवान्! क्या आप यह नही जानते? मुझे भी आपको कहना पडेगा?

मुझे मान नही चाहिए। उससे मुझे जरा भी सुख नही मिलता। देह के सुखोपचार से मेरा शरीर आरामतलव वनता जाता है। मिष्टान्न मुझे विष की तरह कड़ुवा लगता है। कोई मेरी प्रशंसा करता है तो मुझसे वह सुनी नही जाती। तू मुझे ऐसा ज्ञान दे जिससे मैं तुझको पा सकू।

आजतक आयु व्यर्थ गई। यह वडी हानि हुई है। हे हरि, अव तो दौड़

कर आ। बैठा हुआ क्या देखता है ? मेरा-तेरा करते-करते उम्र बीत जायेगी और आखिर मुह मे मिट्टी पड़नेवाली है। मन क्षण की भी फुरसत नही लेने देता; वह भव नदी मे डुबाता है। विषय-रूपी लुटेरो ने मुझे लूट लिया है। हे प्रभो, मै तुम्हारी शरण आया हूं, अब तुम मुझपर कृपा करो।

दभ से कीर्त्ति मिलती है, पेट भरता है, मान मिलता है; मगर यह स्वहित का कोई कारण नही है। ज्ञान का अभिमान रखने से तेरे चरण मुझसे दूर हो जाते है। देह का पालन-पोषण करने से विकार तीव्र होते है। लोक-लाज या लोगो का लिहाज रखकर मै अपना घात स्वय कैसे कर लू ? हे प्रभो, मुझे ऐसा सरल उपाय वता कि आखे तेरे चरणारविन्द देखे।

पहले के ऋषि क्या अज्ञानी थे ? उन्होंने इस जग का त्याग किया। आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा मे तत्पर रहती थी, फिर भी ससारी जनों की बुद्धि के अनुसार नही चले। जिन्होने कद, मूल, पत्ते खाकर शरीर का पोषण किया और निरन्तर वन मे वास किया, वहा मौन ले, आखे वन्द कर शात होकर वैठे। हे अनन्त, ऐसी ही मेरे चित्त की स्थिति कर दे और लोगो को मुझसे दूर रख।

मेरी ऐसी वुद्धि में आग लग जाय कि मै तुझमें समा जाऊँ। इस ऐक्य-वुद्धि का निपेव ही अच्छा है। तू स्वामी मै सेवक, तू ऊँचा मै नीचा। यही कौतुक करना। इसे टूटने मत देना; कारण कि जल जल को नही पीता, वृक्ष अपने फल को नही खाता; भोक्ता अलग होता है, वही उसकी मिठास का अनु-भव लेता है। हीरा कुन्दन मे शोभा देता है, गहने के रूप को सोना शोभता है। गर्मी में छाया सुख देती है। वच्चों के मिलन से मा के स्तनो से दूध की धार छूटती है। एक-से-एक ही मिले तो उस समय क्या सुख होगा ? अलग रहने मे ही मेरा यह चित्त हित मानता है। मैं मुक्त नही होऊंगा, ऐसा मैने निश्चय कर लिया है।

तू वडा उदार है, कृपालु है, अनाथो का नाथ है। जो तेरी शरण में आता

है उसकी बात सुनता है। उसका सारा बोझ तू अपने सिर पर लेकर चलता है। जो मन, वचन और काया से तुझसे अनन्य रूप हो गए है, उनके आवाज़ देते ही तू उनके नजदीक आकर खडा हो जाता है, और उनकी हर इच्छा पूर्ण करता है। वे मार्ग पर चलते है तब तू उनकी सभाल करता है और कही काटे-ककर सामने आये तो तू अपने हाथो से उन्हे दूर करता है। तेरे दासो को चिन्ता नही है; क्योकि सब तरह से रक्षण करनेवाला तू उनके घर में रहता है।

हे देव, मै कीर्त्ति, लोक, दभ, मान लेकर क्या करूं ? तू मुझे अपने चरण दिखला। ज्ञान के बडप्पन का भार लेकर तो मै तेरे चरणो से अलग जा पडूगा।

मेरे प्रभो, मुझे लघुता दो। चीटी को चीनी के दाने और ऐरावत रत्न को अकुश की मार! जिसमे बडापन है उसे कठिन यातनाए भोगनी पडती है। इसलिए छोटे से भी छोटा होना अच्छा है।

हे देव, यदि आप वेद-पुरुष है, तो वेदो ने आपके विषय मे 'नेति' शब्द का प्रयोग करके आपको भिन्न क्यो बतलाया ? हे अनन्त, तुम सर्वगत, सर्व-व्यापी होकर किस कारण मुझसे विलग रहते हो ? यज्ञ के भोक्ता आप है तो वह सफल क्यो नही होता ? उसमे कुछ कमी रह जाने से क्षोभ क्यो होता है ? सब भूतो के अन्दर अगर आप ही है तो यह बाहरी भेद क्यो दिखलाया ? तप, तीर्थाटन, दान के आप ही मूर्त्तिमन्त स्वरूप है, तो इससे अभिमान क्यो होता है ? आपके दरवाजे पर खडा होकर ये आवाज़े लगा रहा हूं, क्षमा करना।

रवि का प्रकाश ही रात्रि का नाश करता है। वह न हो तो बहुत-से दीपक जलाने से रात्रि का नाश हो जायगा क्या ? उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हरि ही मेरे प्राणो मे बसे। इससे अनुभव में न आनेवाली बातो का अभी अनुभव होने लगेगा। राजा के साथ होने से कोई बाधा नही आती और विभिन्न अधिका-

रियो से प्रार्थनाएं नही करनी पड़ती। इससे जन्म आदि बन्धनो का नाश होगा, क्योकि निकटवर्ती हरि पर प्रीति है।

हे प्रभो, ऐसा करो कि किसीसे बोलने का प्रसंग न आये, क्योंकि यह सब उपाधि है। एक तुम्हारे नाम विना सब श्रम व्यर्थ है। मन के अन्य सकल्प होने से पाप-पुण्य पैदा होता है। इसलिए वाणी नारायण के ही निकट विश्रांति ले।

हे प्रभो, मेरी एक विनती सुनो। मुझे मुक्ति नही चाहिए; मुझे बैकुण्ठ का वास नही चाहिए; उससे सुख का नाश है। कीर्त्तन के समय हरिनाम-चिंतन का रस अपूर्व है। हे मेघश्याम, अपने नाम की महिमा का तुमको पता नहीं है, मुझे है; इसीलिए लेना मुझे प्रिय लगता है।

आजतक जो हुआ सो हुआ। भविष्य मे मैं अच्छा मधुर भाषण करूंगा। अब मेरे अपराधो को आप मन में न लाइये। आपके नाम का चिन्तन करने मे तनिक भी वाधा न पडने दीजिए।

हे कृपावंत, तेरी माया मेरी समझ मे नही आती। जन्म देनेवाला कौन और जन्म लेनेवाला कौन? दाता कौन और मागनेवाला कौन? भोक्ता कौन और भुगतानेवाला कौन? रूपवान कौन और कुरूप कौन? सब जगह केवल तू-ही-तू व्याप्त है। तेरे सिवा कुछ नही है।

हे भगवान, मुझे यही दो कि मेरे मुख मे नाम हो और सत्सगति मिले। मुझसे वहिरंग सेवा न लेकर मेरी भावशुद्धिरूपी अन्तरग सेवा ले।

हे दातार, अगर सारी दुनिया मिल जाय तो भी मुझे पर्याप्त नही लगेगी। आदि-से-अन्ततक मुझसे भूल हुई, यह प्रतीति मुझे नहीं होती।

हे देव, मुझमें और तुझमें कोई भेद नही है। जो कुछ है वह तू और तू-ही-तू है। मैं पूर्णरूपेण तेरे स्वरूप के अन्दर हूं। मेरा समस्त बल तेरा ही है।

हे दातार, नर-स्तुति और कथा-विक्रय मेरे द्वारा न होने दो। पर-स्त्री और पर-धन की इच्छा मेरे मन मे न आने दो। लोगो का मत्सर और सतो की निन्दा मुझसे न होने दो। देहाभिमान न होने दो। अपने चरणो की विस्मृति बार-बार न होने दो।

हे देव,यदि मैं मायाजाल मे पड गया, तो तुमको भूल जाऊगा, इसलिए मुझे सतान न दो। मुझे व्य और भाग्य न दो, इससे जी का उद्वेग वढता है। मुझे फकीर सरीखा करो जिससे रात-दिन जीभ पर हरि का नाम रहे।

मेरे नेत्र पर-स्त्री को माता-समान न देखें तो आखो की मुझे जरूरत नही है। मेरे कान यदि किसीकी भी स्तुति या निन्दा सुनने मे कष्ट न माने तो तू उन्हे बहरा कर दे। तेरा विस्मरण हो जाय तो प्राणो के रहने से क्या लाभ?

बीज के पेट मे वृक्ष रहता है और वृक्ष के पेट मे जैसे बीज रहता है, उसी प्रकार,हे देव, हम दोनो एक-दूसरे के अन्दर समा जाते हैं। पानी मे तरगे उत्पन्न होती हैं और फिर वे तरगे पानी मे ही समा जाती है। बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनो ही एक स्थान मे लय हो जाते हैं; उसी प्रकार हे देव, आप और मैं भी एक दूसरे मे लय हो जाते हैं।

हे देव! तू कल्पवृक्ष है, मैं जो इच्छाए करता हू, उन्हे तू पूरी करता है।

हे देव! आपके सिवा मैं किसीका आश्रय नही लेनेवाला। मैंने भय, लज्जा और शका का त्याग कर दिया है।

हे देव! वेद और शास्त्र से तुझे कोई नही समझ सकता, परन्तु भाव और भक्ति ारा तू निकट ही खडा दीखता है। शरणागत भक्तो के तू आगे-आगे चलता हुआ उन्हे सच्चा रास्ता दिखलाता है और उन्हे भटकने नही देता। तू एक होते हुए भी अपने आनन्द के लिए नाम रूपात्मक जगत् का विस्तार करता है और उसमे आनन्द से लीला करता है।

हे राम ! तू परमानन्द स्वरूप है, तू परम पुरुषोत्तम है, तू अच्युत है, अनन्त है, उपाधियो का हरण करनेवाला है, अविनाशी है, अलक्ष्य है, पर-ब्रह्म है, लक्ष्मी का स्वामी है, मगल-स्वरूप है, शुभदाता है ।

हे प्रभो, तुझसे यही मागता ँ कि तू मुझे सतो के हवाले कर दे । तू उदार हो जा और मुझे सतो के चरणों के आगे ले जाकर रख दे ।

: १० :

विचार-मौक्तिक

विवेकपूर्वक भोग भोगने से त्याग होता है। अविचार से भोग का त्याग त्याग न रहकर भोग बन जाता है। जिन कर्मो से देव-मिलन मे अन्तराल हो, वे पाप कर्म है।

टूटा हृदय नही जुडता।

पूर्वोपार्जित पाप हमारे हित मे बाधक होते है।

अन्न मिलना, मान होना, द्रव्य मिलना—सब प्रारब्ध के अधीन है।

अभ्यास से असाध्य भी साध्य हो जाता है।

मुख्य धर्म है देव-चिन्तन, आदि-से-अन्ततक शूर रणागण मे अपना पराक्रम दिखाता है, भीरु अपने घर बैठा कापता रहता है।

जब सचमुच देह मे दैवी शक्ति का सचार होगा, तब क्या कमी रहेगी ?

समाधान ही पूजा है।

जबतक रणभूमि नही दीख पडती, तभीतक युद्ध की बाते करना आसान है।

मिष्टान्न आदि विलास के भोगो से अपनी देह पुष्ट करना अधमो को ही भाता है। देह-रक्षण जीव के हाथ मे है क्या ? मालूम भी न होगा और यह क्षण-भगुर शरीर एक दिन चला जायगा।

ब्रह्म कर्माकर्म से निर्लिप्त रहता है। सहज ब्रह्मभाव की जगह पाप-पुण्य

को स्थान नही है।

आशा के निरसन मे ही हित है।

अनुताप से दोष निमिष-मात्र में चले जाते है, मगर वह अनुताप आदि-से-अन्ततक रहना चाहिए। अनुताप में नित्य स्नान करना ही प्रायश्चित्त है। अनुताप से पाप स्पर्श नही करता।

बडे-छोटे का भेद-भाव दया-धर्म का नाशक है।

जान दिये विना लाभ मुफ्त मे नही हो जाता। रण मे शूर के जान देने से दूना लाभ होता है।

आधार के विना बोलना मानो दादी-मां की कहानी है। जबतक भगवान की पहिचान नही होती, तबतक सब व्यर्थ है।

शीशा अगर हीरे की तरह चमके भी तो भी वह हीरा नही हो जाता। उसी तरह दूसरे को देखकर, सीखकर डौल दिखाया भी तो वह सच्चा नही होता।

प्रभु बहुत बड़ा है, मगर भक्तो के भाव के कारण छोटा होकर उनके दिलो मे रहता है। भक्ति के जोर से जैसा करायें वैसा करके भक्तों की इच्छाएं पूरी करता है। जगत का दान करनेवाला महान् देवभक्तो से तुलसी के पत्ते और पानी मागता है।

वाणी बोलती है मगर अनुभव दुर्लभ है।

यथार्थ बात न कहकर अच्छे लगने के लिए जो औपचारिक भाषण करते है, वे अघोर नरक भोगते है।

सच्चा शूर ही मान पाता है। अन्य सैनिक केवल बोझा ढोते है।

जिस दिन सत घर आये, वही हमारी दिवाली-दशहरा है।

इस भवसागर से मन ही पार उतारता है, और मन ही चौरासी लाख योनियो के बंधन मे डालता है।

सतो की महिमा वहुत दुर्लभ है। हम स्वय सत हो जाय, तभी उनके माहात्म्य का पता लग सकता है।

जीवन को हरि के अर्पण करने से सत-पद मिलता है।

सव का ल सचमुच मिलता है, उसे पाने के लिए किसीको वल-प्रयोग की आवश्यकता नही होती।

छाया की अभिलाषा में क्या है? जल म पडे तारो के प्रतिविम्व को मोती समझकर हस चोंच मार-मार कर जान गवाता है।

सव आगमो (शास्त्रो) का मथन करके निकाला आ सच्चा नवनीत भगवान है।

जो सतो को प्रिय है वह काल का भी काल है।

अभ्यास से सव कार्य सिद्ध होते ह। कोई ऐसा क न काम नही है जो अभ्यास से सिद्ध न हो जाय, मगर जवतक अभ्यास करने का निश्चय नही किया जाता, तवतक कठिन है। रस्सी की रगड से पत्थर तक कट जाता है। अभ्यास से वि तक को खाकर पचाया जा सकता है। मा के पेट में महीने के वालक के रहने योग्य जगह शुरु में होती है क्या? लेकिन धीरे-धीरे उसके रहने योग्य जगह हो जाती ह।

जवतक विश्वम्भर की पहचान नही हुई, तभीतक मित्रो और भाई-बन्दो का प्रेम है। नारायण, विश्वम्भर, विश्वपिता का अनुभव होते ही, ज त

मिथ्या दीखने लगेगा। सूरज जबतक उगा नही तबतक ही दीपक का काम है। सूर्य के प्रकाश मे वह यो ही निस्तेज हो जाता है। देह-सबंध तो प्रारब्ध से होता है, अपना काम तो नारायण से ही रहता है।

लघुता अच्छी, क्योकि उस हालत मे कोई बैर नही धरता।

भोजन देखने, कहने और खाने मे अन्तर, बडा अन्तर है। हीरे का मूल्य पारखी ही जानता है, मूढ को तो वह चकमक पत्थर सरीखा लगता है।

योगियो की संपदा त्याग और शाति है। इससे दोनों लोको मे कीर्ति और मान की प्राप्ति हो जाती है। तृष्णा से जीव 'कष्टी' होता है। सर्व कर्त्तव्य बुद्धि का त्याग करने से जीव शिवपद को भोगता है।

मन मे धैर्य और क्षमा न हो तो जटा रखाना और भस्म लगाना ऐसी देह विडम्बना है, जैसे मुर्दे का शृंगार करना।

चित्त मे शाति रखने से सब सुखों की प्राप्ति होती है।

सत्य बोलने के लिए हरि की प्राप्ति व्यर्थ है। एक सत्य बोलने से ही अत्यत परोपकार होता है। कुवासना का मल छोड़ देने से मन शांत हो जाता है।

जो गुरु शिष्य से सेवा न लेकर उसे देव समान मानता है, उसीका उपदेश फलता है, शेष के उपदेश से दोष मात्र लगता है। जो देह-भाव से उदासीन है, उसीको सच्चा ब्रह्मज्ञान है।

आशा, तृष्णा, माया ये अपमान के बीज है, इनका नाश करने से आदमी लोकपूज्य हो जाता है।

जो जैसे ध्यावेगा, भगवान वैसे ही रूप में दर्शन देगा। जीव जो-कुछ

सेवन करता है, वह सबकुछ हरि भोगता है।

किसी प्रकार का सशय रखना ही दोष है। मन के भले-बुरे सकल्पों से ही पुण्य-पाप होता है, इसलिए उत्तम सकल्प ही शुभ है। चित्त शुद्ध करने में ही कल्याण है।

देव का कृपा करके बोलना ही प्रसाद है। इस आनन्द से आनन्द की वृद्धि करनी चाहिए।

जिसने आशा का अन्त कर दिया, देव उसीके अन्दर निवास करता है।

जिसके दिल मे आशका नही है, वही मुक्त है; और जिसके चित्त में लज्जा, चिन्ता, मोह है, वह वद्ध है। जो एकात सेवन करता है, वह सुख-शाति पाता है और जो लोक मे दभी बना फिरता है, वह दुखी रहता है। दु:ख से छूटकर सुख प्राप्त करने का उपाय छोटा-सा ही है, मगर यह जीव उसे न जानकर इधर-उधर भटककर दुखी होता है।

जो सब जीवो के प्रति नम्र हो गया है, उसने अनन्त परमात्मा को अपने हृदय मे वन्द कर लिया है। इस प्रकार श्रीरग को जीतने मे ही सच्ची शूरता है। सबके प्रति नम्र होना ही पूर्णत्व का कारण है। पानी पतला होने से तल तक जाता है।

जो अनियमित है, उसे दु ख व कष्ट होता है।

नम्रता ही भवसागर पार करने का सारभूत साधन है। बडप्पन का भार सिर पर लेगा तो सागर मे डूव जायगा।

जो आशा से बंधा हुआ है उसे सारे जगत् का दास समझना चाहिए। जो उदासीन है, वह सब लोगो का पूज्य है। जानकार के पीछे उपाधियां लगती है और अनजान को पका-पकाया खाना मिलता है।

मन पर अकुश चाहिए । नित्य नया दिन जागृति का होना चाहिए।

जो जैसे बोले वैसे चले, वह मनुष्य अमोल है ।

जिसका रखवाला देव है, उसे कौन मारेगा ? कांटो से भरे जगल मे वह घूमे, तो भी उसके पैर मे काटा नही लग सकता । न उसे अग्नि जला सकती है, न पानी डुवा सकता है । विष उसके लिए अमृत हो जाता है । न वह रास्ता भूलता है न किसीके फदे मे पडता है । उसे कभी यम-वाधा नही होती । उस-पर आनेवाली गोलियो और वाणो से उसे नारायण वचाते है ।

देव ने जव कुछ करना ठान लिया, तो फिर वहां किसीका कुछ वस नही चल सकता । हरिश्चन्द्र और तारा रानी से डोम के घर पानी भरवाया । भगवान पाडवो के सहायक थे फिर भी उनका राज्य नष्ट करा दिया । इसलिए निश्चल रहकर देखिये कि सहज ही क्या-क्या होता है ।

वाहरी वेष धरने से पेट भरा जा सकता है; परन्तु अन्त करण शुद्ध करके कमाई किये विना परमार्थ नही होता ।

तीर्थयात्रा, व्रतादिक फलाशा के करने से मुक्ति नही मिलती । भगवान् की शरण गए विना सव साधन व्यर्थ है ।

व्यभिचार के निषेधवाचक शव्द सुनकर पतिव्रता को आनन्द होता है, परन्तु उन्हीसे व्यभिचारिणी के मन को धक्का लगता है । अशुद्ध आचरण में आग लगे; जग मे शुद्धपने से रहना ही भला है । धर्माचार सुनकर सदा-चारियों को आनन्द होता है, दुराचारियो को दुःख । युद्ध से शूर को उल्लास होता है, नामर्द का मानो वह मरण-प्रसग ही होता है । आग से शुद्ध सोना अधिक उज्ज्वल होता है, हीन काला पड़ जाता है । जो घन की मार से न टूटे, वही हीरा है ।

जो स्वयं कुमार्ग मे जाकर दूसरे को सुमार्ग दिखाये, उसका जो उपकार

न मानें वह अद्वितीय मूर्ख है। जो स्वयं विष-सेवन करके जाने की अवस्था मे दूसरे को विष-सेवन न करने का उपदेश देता है; जो स्वयं डूबता हुआ अगाध पानी की सूचना देता है, उसका उपकार मानना चाहिए। कहनेवाले के अवगुण छोडकर गुण ग्रहण करने चाहिए।

तीर्थों मे जाकर तूने क्या किया? ऊपर-ऊपर से चर्म का प्रक्षालन। जैसे कटु-वृन्दावन फल को या करेले को शक्कर मे घोकने से भी उसकी कटुता नही जाती, उसी प्रकार तीर्थयात्रा से अन्त.करण के मल नष्ट नही होते।

सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन प्रणोत्सर्ग होने तक करना चाहिए। स्वामी से भूल होने पर समय देखकर व वज्रभेदक उपदेश से भी उसे सुनाना चाहिए। वही सेवक कहलाने योग्य है। ऐसे ही सेवक को स्वामी का अन्न खाने का अधिकार है।

सात्विक लोग अल्पभाषी होते हैं और मक्कार बड-बड करनेवाले।

देव को सबका पालन-पोषण करना पड़ता है, और हमें तो अपने खाने की भी चिन्ता नही करनी पडती। देव को लोगो के पाप-पुण्यो का विचार करना पडता है, हमारे लिए सब लोग भले है। देव के पीछे जग का उत्पत्ति-सहार लगा हुआ है, हमे थोडा-बहुत भी काम नही करना पडता ; देव के पीछे बड़ा काम-धधा लगा हुआ है, हम हमेशा खाली है—विचार करे तो हम सब प्रकार से देव से अच्छे है।

भोगो को कृष्णार्पण करके भोगने से भोग त्याग स्वरूप हो जाता है। इन भोगो का भोक्ता देव है। यह निश्चित रूप से जानकर आपके अलग हो जाने से इसी देह मे भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

देव उदार है। वह थोडे का बदला बहुत देता है।

देव अपने दासो का सेवक बनता है।

पानी सज्जन, दुर्जन सबकी तृष्णा शांत करता है। वह किसीको बुलाने नही जाता, न किसीको अपने गुण सुनाता है।

भिन्न-भिन्न अलंकारो में रहते हुए भी सोना एक ही है। स्वप्न की लाभ-हानि जागने पर मिथ्या हो जाती है।

कौआ मृत जानवरों का मास खाता है। तीतर ककर और हस मोती खाता है। जिसकी जैसी पसद है, जिसका जैसा भाव है, नारायण उसे वैसा ही देता है।

जहा भक्तराज रहता है, वहा स्वय भगवान रहता है। इसमें कोई सदेह नही।

परमार्थ का सच्चा मर्म पाडुरग के विना कोई नही जान सकता। कोई भी कला सिखाई जा सकती है, परन्तु प्रेम किसीके भी हाथ मे नहीं है।

जैसी बुद्धि, वैसी सिद्धि।

जिसके पैर मे जूता तक नही है और राजा से वैर करता है, उसे धिक्कार है। चीटी के मुह मे हाथी का आहार डालने से उसका भार वह उठा नही सकेगी और मर जायगी। इसलिए अपनी शक्ति का विचार करके शूरता से तीर छोडना चाहिए।

पात्रापात्र का विचार किये विना भूखे को अन्न देना चाहिए।

अपना जीव देवार्पण करने का नाम है देव-पूजा। इसके विना सब बेकार है। जैसा बीज, वैसा फल; जैसा कारण, वैसा कार्य। जो जितना नम्र होगा, ईश्वर इतना ही उसे मान देता है।

भक्त और भगवान मे भेद नही है। अग्नि के ससर्ग से लकडी अग्नि हो

जाती है।

प्राणिमात्र के प्रति हमे निर्वैर होना चाहिए। यही सर्वोत्कृष्ट साधन है। नारायण तभी अगीकार करेगा। इसके बिना सारी बडबड व्यर्थ है। चित्त के निर्मल होने पर ही सब काम होते है।

जबतक घी मे छाछ है, तबतक वह कड-कड आवाज़ करता है, शुद्ध होने पर निश्चल शात हो जाता है।

तीर्थयात्रा की अपेक्षा जहा रहते हो वही अधिक पुण्य किस प्रकार सपादन किया जाता है, इस रहस्य को जानना चाहिए। जिनकी एक घडी भी व्यर्थ नही जाती, ऐसे भक्तो की सगति अत्युत्तम है। जो नाम-चिन्तन करते है और कराते है, वे इस भव-नद को पार करने की नौका है। ऐसे परोपकारियो के चरणो पर मेरा मस्तक है।

सोना ही सत्य है, अलकार मिथ्या है।

यदि हमारा अहकार नष्ट हो जाय तो नारायण हमारे घर आकर रहते है।

सारे जग को विष्णुमय मानना वैष्णवो का धर्म है, परन्तु वे उसे नही जानते।

विषयो से मन परावृत हुआ कि शुद्ध आत्मज्योति दिखाई देने लगती है।

अच्छा और बुरा बुद्धि की कल्पना है, मूल आकृति मे भेद नही है, एक पालकी उठाता है, एक उसमे बैठता है, सबको कदम-कदमपर अपने-अपने कर्म भोगने पडते है। एक के समान दूसरा नही है; भिन्नता प्रकृति का स्वरूप है।

उदासीन का देह ब्रह्मरूप है। उसे पुण्य-पाप नहीं लगते। उसके अन्दर अनुतापरूपी अग्नि की ज्वाला जलती रहती है। अहभाव ने ही अन्त.करण को गन्दा कर रखा है। जवतक आकुलता नप्ट नही हुई तवतक चित्त वद्धावस्था मे है।

आशा छोडकर हम वन्धन का पाश तोड देंगे। अन्य वातों का वोझ सिर पर लेने से निज पंथ दूर पड जाता है। उस जीने से क्या लाभ, जिससे ईश-प्राप्ति मे वाधा पड जाय ?

जिसकी संगति से दुःख होता है, उससे प्रीति कैसे हो सकती है ?

वुद्धिहीन को उपदेश देना अमृत को विष वनाना है। आलसी व्यक्ति का हृदय खराव होता है, जैसे कोई शव कामनाओं से अलिप्त हो।

भगवान के चरणो मे प्रीति रखने से सवकुछ प्राप्त होता है। एक-दूसरे की मदद करके हम सव अच्छा मार्ग अपनाये।

संसार असार है, भगवान ही सार है। ईश-चिन्तन के अतिरिक्त सव श्रम व्यर्थ है।

सव भूतो मे श्री नारायण साक्षी रूप रहते है, फिर भी अवगुणी का दडन और गुणी का पूजन होता है।

जिससे अपने चित्त को समावान हो, ऐसा स्वहित हम स्वय ही जानें। वहुत-से रग-रूपो में माया फैली हुई है। उसकी इच्छा कुठित करना ही अच्छा। विश्वम्भर को अनन्य भक्ति से चित्त समर्पण करके नि शब्द रहने मे ही उसकी पूजा होती है।

आमिष की आशा से मछली काटा निगलती है और मरती है। आशा ने ही उसके प्राण लिये। अरे देखो ! वकरा कसाई से कैसा मोह रखता है !

काम-क्रोध को शांत करके सब जीव-जन्तुओ को नमस्कार करने का नाम ही भक्ति है ।

सर्वभोक्ता नारायण है, मै नही, ऐसा जिसकी वाणी वोलती है, उसके सब भोग नारायण को अर्पण होते है । भोजन करते समय अथवा और कार्य करते समय 'सबकुछ भगवान के अर्पण हो' ऐसा कहना चाहिए । इसमे कुछ खर्च नही होता, परन्तु ये शब्द देव को प्रिय है ।

सज्जनो का स्वहित इसीमें है कि लोगो के लिए कल्याणकर नीति, जैसी स्वय को प्रतीत हो, कहें ।

(परमार्थ का) अपार भडार भरा है, कितना भी खर्च करने पर खाली नही होता ।

जो मान चाहता है, उसे अपमान मिलता है । यह सिद्ध है कि आशा अन्त मे नाश करती है । इच्छानुसार फल मिलता कहा है ? फिर भी वासना ही भिखारी वनाती है । किसी ढोर का नाम राजहस रख देने से क्या होता है ?

दूध मे मक्खन है, यह सव जानते है, परन्तु जो मथन जानते है, वही उसे अलग कर पाते है । लोग जानते है कि काठ मे अग्नि है, परन्तु घिसे विना वह जलाने का कार्य कैसे करेगी ? मलिन दर्पण को साफ किये विना मुह कैसे देखा जा सकता है ?

जो देव हो गया है, उसे सव जग देव स्वरूप लगता है । यहा अनुभव चाहिए, कोरा शब्द-गौरव नही ।

छेनी से छील-छीलकर तैयार हुई देवमूर्त्ति देवपने को प्राप्त होती है, परन्तु यदि वह वीच में ही टूट-फूट जाय, तो कोई उसकी पूजा नही करता ।

सूर्य अच्छे-बुरे सब रसो का शोषण करता तो है, परन्तु उनका कोई गुण-दोष उसे नही लगता। वह स्वयं सबसे अलिप्त रहता है। ब्रह्मज्ञान भी ऐसा ही होता है।

अग्नि किसीको बुलाने नही जाती कि मेरे पास आकर अपनी ठड दूर कर लो। पानी भी किसीसे नही कहता कि 'मुझे पीओ'। भगवान भी नही कहते कि मेरा स्मरण करो; परन्तु जिसे अपना उद्धार करने की पडी होगी वह उसका स्मरण करने लगेगा।

सुखरूप जीवात्मा और सुखरूप परमात्मा, इन दोनों का तात्विक योग हो जाय तो फिर इनका सबध तोडे नही टूटता। जिसके प्रति प्रेम हो वह दूर भी हो तो पास लगता है; कारण कि प्रेम तो इतना विशाल है कि आकाश का ग्रास बना ले!

पैसेवाले को दुनिया मान देती है; परन्तु द्रव्य से उत्पन्न होनेवाला अथवा द्रव्य के ऊपर आधार रखनेवाला सौभाग्य नाशवत है।

सब सुख के सगी है और उन्हें कुछ दिया जाय तभी वे काम आते है। दुःख के समय या अत समय कोई काम नही आनेवाले। मेरे शक्तिहीन हो जाने पर नाक और आखे बहने लगेंगी और जोरू तथा बाल-बच्चे मुझे छोड कर चले जायगे। मेरी अपनी स्त्री भी कहेगी, 'मुआ, मरता भी तो नही है। सारा घर थूक-थूक कर खराब कर दिया।' हे प्रभो, अन्तकाल मे तेरे सिवा मेरा कोई सगी नही है।

पंडित और कथावाचक बडे ज्ञानी तो होते है, परन्तु प्रेम-भक्ति के स्वाद से वे अनजान होते है।

बैल की पीठ पर शक्कर की बोरियां हो तो भी उसे कडवी ही खानी पडती है। कीमती चीजो की पेटियां ऊट की पीठ पर लादी जाती है, पर उसे

तो भूख लगने पर काटे ही चवाने पडते है । उसी तरह वडी-वडी आशाओ से नाना प्रकार की प्रवृत्तियो द्वारा प्राप्त की हुई दौलत यहा-की-यही रह जाती है और उसे कमानेवाले को उसके सगे-सवधी वाध-जकड़कर यम के हवाले कर देते है ।

' ससार के सामने नाचनेवाले भाडे के वदर किस काम के ? जब यम उनके काम का हिसाव मागेगा तो उन्हे दात निकालकर खडा रहना पडेगा ।

भूमि तो सारी पवित्र है, वासना ही अपवित्र है ।

एक ही गेहूँ से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार होते है और उन्हें खाने के लिए जीभ ललचाया करती है । भोग भोगने से उनके प्रति राग उत्पन्न होता है और उन्हे वार-वार भोगने का मन होता है । भोग्य पदार्थ जो अपने सामने से खिसक जाय, तो उनके प्रति नित्याकर्षण अधिक प्रवल होता जाता है । समुद्र के अन्दर एक-के-वाद-एक लहर उत्पन्न होती रहती है वैसे ही विषयो का आकर्षण है । अपने वालक को खिलाने के बाद भी उसकी मा उसे बारवार हाथ मे लेकर खिलाती है और खिलाते नही रुकती । छोटे वालक की वोली मे जो मिठास है, उसीका ऊपरी स्वाद चखने से वह माता ऐसी विवश हो जाती है कि उसका सेवन करते-करते उसे कदापि तृप्ति नही होती ।

एक मे जिसकी वुद्धि स्थिर नही हुई, उसमे धैर्य नही है ।

अपने चित्त को देव के साथ वाध रक्खे तो वह उसके पास रहता है । ऐसा होने से ईश्वर के प्रकाश से अन्त करण हमेशा प्रकाशित रहता है । हृदय के अन्दर देव का प्रकाश होना अति उत्तम और मधुर है । ईश्वर का स्मरण करने से सारा व्रह्माण्ड पेट मे समा जाता है । ईश्वर के साथ यदि हम अपना प्रेम-सबध अखड रखें तो सब प्रकार के लाभ हमे आकर घर वैठे मिलते है ।

पानी में पानी मिल जाने पर कौन कह सकता है कि यह पहले व ानी है और यह बाद का ?

देह तो मृत्यु की खुराक है। फिर भी लोग दैहिक प्रपंच का लोभ क्यों करते हैं और उसे सारवस्तु कैसे मान लेते हैं ?

सञ्चित कर्म अपने-अपने विविध भोग भोगने के लिए यह शरीररूपी सुलभ स्थान स्वय तैयार कर लेते हैं।

मुझे हीनता से जीना पड़े तो जीने से क्या फायदा ?

जो संकल्प-विकल्प के वशीभूत है, वह पराधीन है। काम तो सहस्रमुख राक्षस है जिसकी कभी तृप्ति नही होती। अतः हृदय के अन्दर उसे लय कर देने से सुख की प्राप्ति होती है।

सबसे बड़ा विघ्नकर्त्ता देहाभिमान है। इस अभिमान का जिसे स्पर्श भी नही हुआ वह कुलदीपक पैदा हुआ है ऐसा समझो।

ससार अपवित्र है ऐसा विचार मन में लानेवाला ही अपवित्र है। भूत-मात्र के प्रति दया रखना ही मुख्य धर्म है और यही संत-कार्य कहलाता है।

किसीको अजीर्ण हो और उसे सिर और डाढी मुडाने की सलाह दी जाय, तो यह उसका उचित इलाज नही है। अपने योग्य आवश्यक कर्मो को विधिवत् करना चाहिए और वे भी उतने ही करने चाहिए जितने आवश्यक हो।

दूध-पीते बच्चे की मां जिन-जिन पदार्थों का सेवन करती है उनका सर्वोत्तम भाग दूध मे आ जाने से बालक के पेट में ही जाता है। यह सब ऋणानुबन्ध का सबंध है, यह मैं सरल भाव से सबसे कहता हूँ।

चावल पक जाने पर उसे पुन. चूल्हे पर रखना व्यर्थ है । योग्य समय योग्य काम करने का नाम ही धर्म है । हर काम के लिए यथोचित समय होता है ।

मन को जैसे विचारो के रंग मे रगे, वैसे विचारो का रग उसपर चढ जाता है और फिर उसे उसी बात की धुन लग जाती है ।

भगवान के ऊपर जिसका दृढ विश्वास जम जाता है उसका हृदय तो अनायास ब्रह्मरस से भरपूर बन जाता है ।

पत्थर के अन्दर भक्ति-भाव से देव की कल्पना करने से अपनी भावना के जोर पर भाविक भक्त तर जायगे, परन्तु वह पत्थर तो पत्थर ही रहेगा ।

कोई स्त्री अपनी अच्छी धोती फाड डाले और नंग-धडग होकर खड़ी रहे, तो हम जानते हैं कि वह सचमुच पागल होगई है । परन्तु मन में तो पागलपन न हो और कोई पागल होने का पाखड करे, और दूध व दही दोनो मे पैर रखकर बडी-बडी वाते करे, उससे क्या होता है ? मृगजल को देखने से और उसका सेवन करने से प्यास नही बुझती । जो अपनी कार्यसिद्धि के लिए जाते समय दूसरो की बाट जोहता नही खडा रहता, उसे ही सच्चा शूरवीर समझना ।

दुराग्रह का ही नाम पाप है ।

अपना मन वश मे करने का उपाय यदि हाथ मे आ गया तो फिर क्या दुर्लभ है ?

कोई पत्थर के साथ अपना सिर फोडे तो उसका सिर फूट जायगा, परन्तु पत्थर नरम न होगा ।

अवसर का लाभ उठानेवाले मे युक्ति, वल, सबकुछ चाहिए । कब

लाभ होगा और कव हानि, इसका कोई नियम नही है। ये अकस्मात् होते है। जो काम करना हो, तद्विषयक पूर्ण विचार कर लेने के वाद योजनानुसार कार्य करना चाहिए, जैसे फसल की तैयारी मे।

स्वरूप का ज्ञान होने पर सवकुछ शुद्ध हो जाता है। दुराग्रह नही रहता। वहा हर्ष-शोक का नाश हो जाता है। स्वरूप स्थिति मे आकर व्यक्ति दूसरे से निराला बोलने लगता है।

भगवान को सव कर्म अर्पण कर देने पर मन निश्चित हो जाता है। ऐसा न करने से व्यर्थ भ्रम उत्पन्न होता है और कर्म-बन्धन मे बध जाना पडता है। एक मुख्य देव की सेवा किये विना सव निरर्थक है।

परमार्थ के मार्ग मे बाधा डालनेवाले हमारे पाप-पुण्य है; और पाप-पुण्य का कारण देह-वुद्धि है। शूरवीर इस शिकजे से एक तडाके मे छूटकर मुक्त हो जाते है।

ब्रह्मरस का भोजन करने से प्रत्येक ग्रास पर प्रेम-वृद्धि होती है।

मन मे सच्ची लगन हो तो शक्ति भी आ जाती है। मन उदार हो जाय तो किस वात का अभाव रहे?

शोक करना वृथा है। उसमें से खराव कमाई की दुर्गंध आती है।

जिसके अन्त.करण में जो दोप होता है वही उसे पीडा पहुचाता है।

राजा अन्याय से वर्तनेवालो को दण्ड दे, तो ये अधर्मी हरामखोर, लोगो को वडे कप्ट देंगे। सन्त दूसरों को दु.ख देने का दुष्कर्म न करे, परन्तु नीति का विचार करके अनीति पर चलनेवालो को दण्ड देना पड़े तो उससे पाप नही लगता।

अन्त करण के अन्दर जैसा स्वभाव होता है, वैसा बाहर प्रकट हो जाता है और उससे मनुष्य की पहचान अपने-आप हो जाती है।

निश्चित रहने से मन समाधान अवस्था मे रहता है।

निन्दा और स्तुति दोनो मिथ्या है।

क्रोध करने से पुण्य का नाश हो जाता है।

युक्त आहार करना, नीति के रास्ते चलना, वैराग्य, आदि गुणो को धारण करना—ये ही तरने के मुख्य साधन है।

अन्त करण को शुद्ध करना ही मुख्य कार्य है।

क्षमा से ही सबका कल्याण होता है।

मन के सकल्पो से पाप अथवा पुण्य हुए बिना रहता ही नही। जो-कुछ होता है उस सबका मूल कारण मन है। मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रस में (विषय में) मिला दे उसके साथ मिल जाता है।

क्रोध का उदय होने पर मुह से जो शब्द निकलते है, वे नरक-सरीखे होते है।

पश्चात्ताप-रूपी तीर्थ मे स्नान करके आत्म-बोध रूपीसूर्य के दर्शन करे तभी शुद्धि होती है।

उपकार करना पुण्य है और सताना पाप। इसके अतिरिक्त और न कुछ पुण्य है, न पाप। सत्य भाषण और सत्य आचरण ही मुख्य धर्म है, मिथ्या-भाषण और मिथ्या आचरण ही पाप को बढानेवाले है। पाप-पुण्य का यही एक मर्म है, अन्य नही। श्रीहरि का नाम-स्मरण ही मुख्य गति है और उससे विमख होना ही नरकवास है। सतो की सगति ही स्वर्गवास है। सतो के

प्रति उदासीन भाव रखना या उन्हे धिक्कारना ही घोर नरक है ।

देव की प्राप्ति का सच्चा मर्म यह है कि चित्त मे उपरति होनी चाहिए और रोम-रोम मे हरिप्रेम व्याप्त हो जाना चाहिए ।

कामधेनु के बछडे को खाना न मिले, कल्पवृक्ष के नीचे बैठनेवाले को भूखो मरना पड़े—यह कभी हो सकता है ?

कभी कोई मा किसी वस्तु को फेकने का ढोग करके बगल मे छिपा लेती है, वैसा ही खेल देव भी तेरे साथ लाड लडाता हुआ खेल रहा है ।

एक वार जो इस जीव को उत्तम पुरुष के सुख का अनुभव हो जाय तो फिर वह कभी दु ख का स्पर्श न होने देगा, कभी वियोग न होने देगा । देव सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न है ।

स्वय तर जाने मे क्या वड़प्पन है ? दूसरे जड़वुद्धि लोगों को भी हरि-नाम प्रेमी कर देना चाहिए । पृथ्वी इतना वोझा उठाती है, इससे उसे स्वयं क्या लाभ ? गाय अपना दूव दूसरो को दे देती है, स्वय एक वूद भी नही चखती । वर्षा वृष्टि करती है उससे उसके हाथ क्या आता है ? सूर्य, चन्द्र विश्राम लिये विना प्रकाशदान करते रहते है । क्यो ? परोपकारार्थ । ये सव काम राम ही करते है ।

सत्य के विना काव्य मे रस नही आता । अनुभवरहित कविता लिखने का पाप कौन करे ? थोथे अनुभवहीन सकल्प लज्जास्पद है ।

गुरु के वचन सुनकर जो उन्हें अन्त करण में धारण कर सकता है, उसे सरल अन्त करणवाला कहना चाहिए; और जो धैर्य के अभाव से 'हाय ! मेरा क्या होगा ?' ऐसा रोना रोता फिरे, उसे हीनवुद्धि समझना ।

जो अपना जीवभाव देव के चरणो में समर्पित कर देता है और जो ससार

की उपाधि मे पडता है, वह कृपण है ।

जिसकी बुद्धि स्वाधीन हो गई है, वह जो कुछ करता है वह साधनरूप ही हो जाता है । जो दूसरे की बुद्धि का अनुसरण करके काम करता है, उसे वड़ी हानि होती है ।

जो अपनी इन्द्रियो को वश मे रखता है, वह सव जगह उत्तम सम्मान पाता है ।

जो सारी वात का सार जान लेता है, उसे ज्ञानी समझना और जो दूसरे के साथ वादविवाद करने मे अपना भूषण मानता है, उसे तुच्छ समझना ।

जो गाय का और अतिथि का भाग निकालकर जीमता है, उसे शुद्ध आचरणवाला, और जो पगत मे बैठे हुए दूसरे लोगो को न देकर अकेला ही खाता है, उसे अनाचारी कहना चाहिए ।

देव भावानुसार फल देता है । सब अपने-अपने भावानुसार फल भोगते है । सचित कर्मों के सिवा और कुछ साथ नही जाता ।

वासना को जड से उखाडे बिना भवजाल नही टूट सकता ।

'प्रारव्ध मे लिखा होगा सो होगा'—ऐसा कोई न कहे । प्रयत्न किये बिना देव की प्राप्ति नही होती । प्रारव्धानुसार परिणाम आयगा, ऐसा विचार करके क्या कोई काटो पर भी चलता है ? अथवा जीवित साप पकड़ने की हिम्मत रखता है ? इसलिए 'आत्मोन्नति के कार्य मे प्रारव्ध विघ्न नही कर सकता' ऐसा विचार करके हरकोई अपना हित साध सकता है ।

देव को पैसे-टके की कोई गरज नही होती । उसे तो एकमात्र भक्ति-भाव की ही स्पृहा होती है ।

...सारी फजीहत का कारण यह है कि लोग जीभ और जननेन्द्रिय के गुलाम हो गए हैं ।

यदि अपना मन शुद्ध होगा,तो अपना शत्रु भी मित्र हो जायगा और बाघ, सर्प, आदि तक हमको दु ख न दे सकेगे। मन की निर्मलता से विष भी अमृत हो जायगा। कोई हमपर प्रहार करेगा तो वह भी हमको लाभकर्त्ता होगा। धधकती अग्नि भी शीतलता प्रदायिनी हो जायगी। जो व्यक्ति मनुष्य-मात्र को अपने जीव के समान मानकर उनके ऊपर प्रेम रखता है, उसके प्रति प्राणीमात्र के मन में भी वैसा ही भाव उत्पन्न होगा। जिसे ऐसा अनुभव होने लगे उसपर नारायण की सम्पूर्ण कृपा हुई है, ऐसा समझना।

